पाश्चात्य काव्य-शास्त्र

(विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध विभिन्न महाविद्यालयों में संचालित
बी. ए. /एम. ए. हिन्दी साहित्य के पाठ्यक्रम पर आधारित पाठ्य-पुस्तक)

●

संपादक

डॉ. रमेश टण्डन

(एम. ए.- हिन्दी, अंग्रेजी, पी-एच. डी., सीजी सेट)

विभागाध्यक्ष - हिन्दी

शासकीय महात्मा गांधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय

खरसिया, जिला- रायगढ़ (छ.ग.)

●

सह-संपादक

डॉ. कल्पना मिश्रा

एम. ए. (हिन्दी), पी-एच. डी.

डॉ. श्रीमती बी. नन्दा जागृत

एम. ए. (इतिहास, समाजशास्त्र, हिन्दी), पी-एच. डी. (हिन्दी)

प्रो. राजकुमार लहरे

एम. ए., नेट, स्लेट, सेट (तीन बार), सीजी टेट, सी टेट

श्रीमती सपना पाटले

एम. ए. (हिन्दी, संस्कृत), डी. एड.

सर्वप्रिय प्रकाशन

दिल्ली-रायपुर

पाश्चात्य काव्य-शास्त्र

ISBN- 978-93-91007-65-0

●

प्रकाशक

सर्वप्रिय प्रकाशन

1569, प्रथम मंजिल, चर्च रोड,

कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006

मो. 94253-58748

e-mail : sarvapriyaprakashan@gmail.com

आवरण सज्जा : कन्हैया

प्रथम संस्करण : सितम्बर 2022

मूल्य : 400.00 रुपये

कॉपीराइट : लेखकाधीन

PASHCHATYA KAVYA SHASTRA

BY : RAMESH TANDAN

●

Published by

Sarvpriya Prakashan

1569, First Floor Church Road,

Kashmiri Gate, Delhi-110006

First Edition : September 2022

Price : Rs.400.00

प्रस्तुत पुस्तक के विभिन्न अध्यायों में लिखित पाठ्य सामग्री उसके लेखक/संकलनकर्त्ता के द्वारा बी. ए. /एम. ए. हिन्दी में अध्ययनरत छात्रों के हित के लिए विभिन्न किताबों अथवा नेट से संकलित की गई है। अपने पाठ की पूर्णता के लिए इस पुस्तक के अध्याय लेखकों ने मूल किताबों अथवा परवर्ती संदर्भ/शोध ग्रंथों अथवा नेट से उद्धरण अथवा उदाहरण लिए हैं, अत: उन मूल किताबों अथवा परवर्ती संदर्भ/शोध ग्रंथों अथवा नेट के क्रमश: लेखकों अथवा संपादकों/शोध छात्रों अथवा अपलोडर्स का सर्वश्रेष्ठ आभार जिनकी पाठ्य सामग्रियों को यहाँ उद्धृत किया जा सका है। मौलिक तथ्यों /परिभाषा आदि में फेरबदल के लिए इस पुस्तक के संपादक अथवा प्रकाशक जिम्मेदार नहीं होंगे, अपितु अध्याय लेखक स्वयं जिम्मेदार होंगे तथा किसी विवाद की स्थिति में न्याय क्षेत्र खरसिया (छ.ग.) ही होगा।

उमेश पटेल
मंत्री
छत्तीसगढ़ शासन
उच्च शिक्षा, कौशल विकास,
तकनीकी शिक्षा एवं रोजगार,
विज्ञान और प्रौद्योगिकी, खेल एवं युवा कल्याण विभाग

मंत्रालय कक्ष क्रमांक- M1-12
महानदी भवन, नवा रायपुर अटल नगर, रायपुर 492002 (छ.ग.)
फोन : 0771-2510316, 2221316
नि. : D-1/2, शास. आवासीय परिसर, देवेन्द्र नगर, रायपुर
फोन : 0771-2881030
ग्राम व पोस्ट नंदेली, जिला-रायगढ़ कार्यालय: 7000477747

क्रमांक 0523/MINISTER/CG/KHS/GOVT/2021 दिनांक 05/06/2021

शुभकामना संदेश

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि एम.ए. हिन्दी हेतु डॉ. रमेश टण्डन के द्वारा पाठ्य पुस्तक "**पाश्चात्य काव्य शास्त्र**" संपादित किया जाना एक सराहनीय पहल है। यह पुस्तक छात्रों के लिए उपयोगी साबित होगी। उम्मीद है कि एक ही किताब में समग्र पाठ्यवस्तु एवं विस्तृत जानकारी छात्रों को मिल सकेगी।

किताब संपादन व प्रकाशन पर संपादक डॉ. रमेश टण्डन एवं सहपाठी प्राध्यापक-लेखकों को मेरी शुभकामनाएँ!

(उमेश पटेल)

प्रति,
श्री रमेश टण्डन
प्राध्यापक
एम.जी. कॉलेज, खरसिया
जिला रायगढ़ (छ.ग.)

संपादक कहते हैं...

सम्मानीय पाठक,

'वसुधैव कुटुम्बकम्', हम भारतवासी इस विचार को लेकर जीते हैं। हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा और इसका साहित्य, हिन्दी में किया गया पुनीत कार्य है। तब 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की परिधि में हिन्दी साहित्य भी आ जाता है। इस कारण, हम हिन्दी और हिन्दी की जननी संस्कृत के द्वय आचार्यों के काव्य शास्त्रों और मत को अध्ययन करने के साथ पाश्चात्य विचारकों के सिद्धांत और वादों का भी अध्ययन करते हैं। इससे हमारे ज्ञान में अभिवृद्धि तो होती ही है, हम उनसे कुछ ग्रहण भी करते हैं, साथ ही पाश्चात्य देशों के विचारों से परिचित भी होते हैं।

उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे छात्रों के लिए भारतीय काव्य शास्त्रों के अध्ययन के साथ–साथ पाश्चात्य काव्य सिद्धांतों एवं विभिन्न वादों जैसे– अभिजात्यवाद, स्वच्छन्दतावाद, अभिव्यंजनावाद, मार्क्सवाद, मनोविश्लेषणवाद, अस्तित्ववाद आदि का अध्ययन इस दृष्टि से श्रेयस्कर होगा कि एक तो उनके पाठ्यक्रम में यह शामिल है, दूसरा उनका विचार विश्व स्तर का होगा।

पाश्चात्य काव्य सिद्धांत और वाद, क्लिष्ट और दार्शनिकता लिए हुए है, जो सामान्य पाठकों के लिए सहज बोधगम्य नहीं है। अतः पाश्चात्य काव्य सिद्धांतों और वादों को सरल भाषा में छात्रोपयोगी, पाठ्यक्रमानुसार, समेकित एक ही पुस्तक में उपलब्ध कराना हम शिक्षक–लेखकों का नैतिक दायित्व है, जिससे पात्र छात्रों को अध्ययन–सामग्री के संकलन और सुगम अध्ययन में सहज महसूस हो। छात्र–हित में किया गया यह पुनीत कार्य निश्चित रूप से छात्रों का मार्ग प्रशस्त करेगा। छत्तीसगढ़ के विभिन्न महाविद्यालयों में शिक्षकीय दायित्वों का निर्वहन कर रहे लेखक–शिक्षकों का हृदय से धन्यवाद है, जिन्होंने छात्रों के हित के लिए शोध–अध्ययन किया

और यह पुस्तक तैयार करने में सहयोग किया। डॉ0 कल्पना मिश्रा को विशेष धन्यवाद देता हूँ।

कुछ निजी होते हुए; हमारे महाविद्यालय का नैक समन्वयक होने के कारण बड़ी जिम्मेदारी को निभाना, महाविद्यालय का प्रशासनिक चालू प्रभार देखना, पारिवारिक जिम्मेदारी को भी निभाना दिन–रात कार्य करने जैसा है। अतः इस कार्य को पूर्णतः संपादित कर पाने में पूज्य पिता जी श्री कौशलप्रसाद टण्डन, धर्मपत्नी श्रीमती पूर्णिमा टण्डन एवं परिवार के अन्य पूज्य पिता तुल्य श्री फूलसाय कुर्रे एवं माँ तुल्य श्रीमती बिसाहीन कुर्रे, हेमलता, देवला, डिम्पल, दोलिका, सानिध्य, बसंत कुर्रे, समशेर लहरे, घनश्याम खटकर, विरेन्द्र अजय आदि का परोक्ष सहयोग रहा, इन्हें धन्यवाद प्रेषित करता हूँ।

भावी सहयोग व सुझाव का आकांक्षी.....

संपादक

डॉ. रमेश टण्डन

अनुक्रमणिका

क्र.	अध्याय	लेखक	पृ.
1.	प्लेटो : काव्य सिद्धांत	श्री गोवर्धन सूर्यवंशी	09
2.	अरस्तु : अनुकरण सिद्धांत एवं त्रासदी विवेचन	श्री गोवर्धन सूर्यवंशी	17
3.	लोंजाइनस : उदात्त की अवधारणा	डॉ. शिवदयाल पटेल	30
4.	वड्र्सवर्थ : काव्य भाषा का सिद्धांत	श्रीमती पुष्पांजली दासे	37
5.	कालरिज : कल्पना सिद्धांत एवं ललित कल्पना	श्रीमती सरोजनी डडसेना	44
6.	मैथ्यू आर्नाल्ड : आलोचना का स्वरूप और प्रकार्य	श्री वासुदेव प्रसाद पटेल	56
7.	टी. एस. इलियट : परम्परा की परिकल्पना और वैयक्तिक प्रज्ञा	डॉ. रेखा दुबे	66
8.	टी. एस. इलियट : निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत, वस्तुनिष्ठ समीकरण, संवेदनशीलता का असाहचर्य	श्री शाहिद हुसैन	71
9.	आई. ए. रिचड्र्स : रागात्मक अर्थ, संवेगों का संतुलन, व्यावहारिक आलोचना	श्रीमती सपना पाटले	75

10.	अभिजात्यवाद	डॉ. रमेश टण्डन	88
11.	स्वच्छन्दतावाद	डॉ. जयती बिस्वास	91
12.	अभिव्यंजनावाद	श्रीमती वंदना जायसवाल	108
13.	मार्क्सवाद	श्रीमती वंदना जायसवाल	114
14.	मनोविश्लेषणवाद	डॉ. कल्पना मिश्रा	124
15.	अस्तित्ववाद	डॉ. कल्पना मिश्रा	130

(1)

प्लेटो : काव्य सिद्धांत

गोवर्धन प्रसाद सूर्यवंशी

पाश्चात्य काव्यशास्त्र का इतिहास यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो और अरस्तु से प्रारंभ होता है। प्लेटो प्रत्ययवादी चिंतक हैं, तो अरस्तु अनुभववादी। पाश्चात्य काव्यशास्त्र की शुरुआत ईसा पूर्व पांचवीं शताब्दी के आरंभ से माना जाता है, जिसका बाद में क्रमशः विकास होता गया। प्लेटो के गुरु सुकरात एक संत, महात्मा, दार्शनिक चिंतक और तार्किक व्यक्ति थे। सुकरात का विश्वास था कि शिक्षा सद्‌गुणों का विकास करती है, अतः मनुष्य को प्रेरणा अपनी आत्मा की आवाज से लेनी चाहिए। सुकरात ने अपने जीवन और उपदेशों में नैतिकता, सदाचार एवं सच्चाई के ज्ञान पर बल दिया। वस्तुतः प्लेटो के गुरु सुकरात के चिंतन में काव्यशास्त्र संबंधी कोई प्रत्यक्ष विचार नहीं मिलता है। पर प्लेटो ने अपने गुरु सुकरात के दर्शन और चिंतन से प्रेरित होकर काव्यशास्त्र संबंधी विचार व्यक्त किए, जो बहुत महत्वपूर्ण है।

प्लेटो का प्रारंभिक जीवन

प्लेटो यूनान के प्राचीन दार्शनिक एवं मर्मज्ञ व्यक्तियों में सर्वोच्च स्थान रखते हैं। प्लेटो का जन्म 427 ईसा पूर्व एवं मृत्यु 348 ईसा पूर्व माना जाता है। प्लेटो दर्शनशास्त्र के प्रकांड विद्वान थे। उनके गुरु का नाम सुकरात था। प्लेटो के पिता का नाम ''अरिस्टोन'' और माता का नाम ''पेरिक्यिटोन'' था।

---

* जन्म तिथि : 22 सितम्बर 1975, माता : श्रीमती इतवारा देवी सूर्यवंशी, पिता : श्री घासी राम सूर्यवंशी, पत्नी : श्रीमती रजनीगंधा सूर्यवंशी, शैक्षणिक योग्यता : एम. ए. (हिन्दी, राजनीति शास्त्र), बी. एड., नेट, सेट, सम्प्रति : सहायक प्राध्यापक (हिन्दी), शासकीय महाविद्यालय बतौली, जिला– सरगुजा (छ.ग.), मो. : 9755724330, मेल आई डी : govardhanji40@gmail.com

माता और पिता दोनों के परिवार एंथेस के सुप्रसिद्ध परिवारों में से एक थे। माता के भाई सुकरात के मित्र थे। संभवतः इसी कारण प्लेटो को यूनान के महान दार्शनिक सुकरात के सान्निध्य में रहने का अवसर मिला। सुकरात को प्राण दंड मिलने के पश्चात प्लेटो का रुझान व्यावहारिक राजनीति से राजनीतिक दर्शन की ओर हुआ। उनका ग्रंथ ''रिपब्लिक'' राजनीतिक चिंतन और आदर्श राज्य के स्वरूप को प्रदर्शित करने वाला एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है, जिसका अधिकांश भाग संवाद और कथोपकथन के रूप में विद्यमान हैं। प्लेटो सुकरात के विचारों और कार्य पद्धति से बहुत प्रभावित थे। यूनान के शासकों द्वारा सुकरात को नवयुवकों को पथभ्रष्ट करने के अपराध में मृत्युदंड की सजा का ऐलान किया गया था।

प्लेटो अपने गुरु को मृत्युदंड की सजा से बचाना चाहते थे और उन्हें कारावास से निकाल लेने की पूरी व्यवस्था भी कर ली थी, परंतु सुकरात ने उसे स्वीकार नहीं किया। जीवन भर नैतिकता और सदाचार का पालन करने वाले सुकरात ने कहा कि राजकीय कानून हमारे द्वारा ही बनाए गए हैं और वे (राजकीय कानून) खड़े होकर हमें धिक्कार रहे थे कि ''तुम्ही ने हमें बनाया और तुम्ही हमें अपमानित कर रहे हो।'' मेरे पास उनके लिए जवाब नहीं है। ऐसा कह कर सुकरात ने नैतिकता का पालन करते हुए विष का प्याला पी लिया। सुकरात की मृत्यु के पश्चात उसके प्रिय शिष्य प्लेटो को विश्वास हो गया कि सक्रिय राजनीति में उनके जैसे विचारकों और विद्वानों का कोई स्थान नहीं है। प्लेटो ने सुकरात की मृत्यु के पश्चात एंथेस को छोड़ दिया और अन्य देशों की ओर चले गए। इस बीच प्लेटो ने मिस्र, सिसली, इटली और यूनान के अनेक स्थानों की यात्राएं की। अनेक देशों की यात्राओं के दौरान उन्हें अनेक प्रकार के अनुभव हुए। लोगों की अभिलाषी जीवन शैली देख उनके मन में विरक्ति का भाव जागृत हुआ।

अकादमी की स्थापना

दार्शनिक और वैज्ञानिक अनुसंधान को व्यवस्थित करने के लिए अनेक देशों की यात्रा से लौटने के पश्चात प्लेटो ने ईसा पूर्व 387 में एक ''अकादमी'' की स्थापना की, जिसे यूरोप का सर्वप्रथम विश्वविद्यालय होने का श्रेय प्राप्त है। इस अकादमी की स्थापना का मुख्य उद्देश्य दार्शनिक और वैज्ञानिक अनुसंधान को व्यवस्थित करना एवं उनका विकास करना था।

अकादमी की स्थापना के पश्चात प्लेटो ने अपना शेष जीवन ज्ञान–विज्ञान के अध्ययन–अध्यापन और शोध कार्यों में लगाया। प्लेटो के द्वारा लिखे गए कुल ग्रंथों की संख्या 36 मानी जाती है, जिनमें 23 संवाद (क्पंसवहनमे) और 13 आलेख अथवा शोध पत्र है। इन ग्रंथों में प्लेटो ने दर्शनशास्त्र, विज्ञान और राजनीति दर्शन पर चिंतन संबंधी विचार प्रकट किए। इनमें ''पोलिटिया'' (दि रिपब्लिक) और नोमोई (लाज) अधिक महत्वपूर्ण है। प्लेटो ने काव्यशास्त्र पर अलग से प्रकाश न डालते हुए राज्यशास्त्र पर विचार करते हुए प्रायः कवि, कलाकार और उनकी कला के ऊपर अपना मत व्यक्त किया। वे कवि, कलाकार और उनकी कृतियों को राजनीति, शासन–व्यवस्था और नैतिकता के परिपेक्ष में ही देखते रहे। प्लेटो की ''आयोन'' और ''रिपब्लिक'' नामक रचना में कला के संबंध में विचार मिलते हैं। प्लेटो के विचार से कवि तर्क रहित होकर आवेग और भावनाओं से अपनी रचना करते हैं, इसलिए यह रचनाएं वैज्ञानिक नहीं होती। इसलिए ये रचनाएं वस्तुतः समाज को उत्तेजित कर उसे अनैतिक और अनुशासनहीन बनाती है।

प्लेटो का काल एवं परिस्थितियां

प्लेटो का जन्म जिस समय हुआ, उस समय एथेंस का पतन काल था। एथेंस में युद्ध से पराजित जनता अनेक कष्टों और कठिनाइयों से जूझते हुए शक्तिहीन हो गई थी। जनता के पराजित होने के कारण समाज में रूढ़िवादी कर्णधारों और उनके समर्थकों का बोलबाला था। सभी ओर आध्यात्मिक मूल्यों का ह्रास, अवसरवादिता और विश्वासघात का माहौल था। अधिकतर जनता में ऐसे व्यक्ति थे, जो पराजित और दास थे। उनकी पीड़ा का वर्णन करना अत्यंत कठिन था। एथेंस की सभ्यता एवं संस्कृति का निर्माण श्रमजीवी जनता और दासों के मेहनत और बल पर हुआ था, परंतु ये लोग नागरिक जीवन में विभिन्न अधिकारों से वंचित थे। प्रजातंत्र के नाम पर राज्य की सत्ता व्यापारियों और कुलीन लोगों के हाथ में थी। आम जनता को राज्य की स्थापना में त्रुटियां दिखाई दे रही थी। जनता ने अनुभव किया कि एथेंस के निवासी मन से दृढ़ और शरीर से स्वस्थ होते, तो उनकी पराजय नहीं होती। प्लेटो ने ऐसे समय में अपना पूरा चिंतन इसी आधार पर केंद्रित किया। प्लेटो ने युवकों को दर्शन, संगीत और गणित की शिक्षा देने पर बल दिया, इसलिए अधिकांश विद्वानों का यह मत है कि प्लेटो का आदर्शवाद समकालीन सामाजिक पतन की गहरी प्रतिक्रिया का परिणाम है।

वस्तुतः प्लेटो की मूल दृष्टि आत्मवादी (Subjective) या प्रत्ययवादी (Idealist) थी। अर्थात प्लेटो के मत से यह विश्व और उसके सकल पदार्थ विश्व की विराट चेतना में प्रत्यय के रस में स्थित हैं। बाहरी संसार में हम जो कुछ देते हैं, वह उस अमूर्त प्रत्यय का मूर्त अनुकरण मात्र है। कविता बाह्य संसार से सामग्री ग्रहण करती है और इस सामग्री को ही संशोधित, संपादित अथवा संयोजित कर नए स्वरूप में काव्य का सृजन करती है। इस तरह कवि के द्वारा रचित काव्य अनुकरण का अनुकरण होने के कारण सामान्यतः ग्रहणीय नहीं है। प्लेटो के मत से कविता में वैज्ञानिकता, तर्कसिद्धता और गहरी मानवीय सामाजिकता का अभाव होता है। इसका कारण कविता का सत्य से परे होना बताया गया है।

प्लेटो का अनुकरण सिद्धांत

प्राचीन यूनान में अनुकरणात्मक सिद्धांत का प्रवर्तन होमर ने किया था। होमर के अनुकरणात्मक सिद्धांत का सबसे अधिक समर्थन प्लेटो ने किया था और इसी सिद्धांत को आधार मानकर उन्होंने अनुकरण संबंधी अपने विचार विविध विषयों पर व्यक्त किए थे। प्लेटो दैवीय प्रेरणा पर विश्वास रखते थे। उनके अनुसार, काव्य और कला का सृजन दैवीय प्रेरणा का परिणाम है। प्लेटो ने अपने विचारों और संवादों में कई स्थान पर कवि के दिव्य पागलपन (Divine Insanity) की चर्चा की है। प्लेटो का विचार है कि कवि के भीतर नई उद्‌भावना और भावावेश कला से नहीं, बल्कि दैवीय प्रेरणा से उत्पन्न होता है। उत्कृष्ट काव्य कार्य के उच्च भावनाओं व उच्च विचार तथा ज्ञान के संचार से शुरू होता है, इसलिए वह समाज के लिए उपयोगी होता है। इसके विपरीत निम्न कोटि का काव्य अपने सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वहन सही प्रकार से नहीं करता, जिसके कारण समाज में अनैतिकता और भ्रष्टाचार पनपता है एवं समाज के द्वारा निर्मित उच्च आदर्श क्षीण होते जाते हैं और लोगों में उच्च आदर्शों के प्रति अनास्था का भाव जागृत हो जाता है। इस तरह निम्न कोटि का काव्य समाज के लिए घातक एवं अनुपयोगी है। निम्न कोटि का काव्य धर्म, ज्ञान, नीति और ईश्वर विरोधी होने से अग्राह्य है पर इसका मतलब यह नहीं है कि प्लेटो कवियों की निंदा करते हैं। प्लेटो कवियों को परमात्मा या दैवीय भावना को व्यक्त करने वाले मानते हैं और उन्हें संतो और पैगंबरों की कोटि

में रखते हैं और यह विश्वास करते हैं कि उनके माध्यम से परमात्मा स्वयं हमसे बात करते हैं। इस तरह कवियों के संबंध में विचार रखते हुए प्लेटो उनके दिव्य पागलपन की चर्चा करते हैं। प्लेटो की विचारधारा आदर्शवादी विचारधारा थी। एक दार्शनिक के रूप में प्लेटो आदर्शवादी विचारधारा के समर्थक थे। काव्य के संबंध में प्लेटो के विचार उनकी अनेक कृतियों में उल्लेखित है, जिनमें से प्रमुख कृतियां निम्न हैं।

1. इयोन (Ion),
2. सिंपोजियम (Symposium),
3. रिपब्लिक (Republic)।

काव्य संबंधी विचार

सामान्यतया एक दार्शनिक और विचारक के रूप में प्लेटो के काव्य संबंधी विचारों की विवेचना करते समय उनके द्वारा कविता पर लगाए गए आक्षेपों का उल्लेख करना उपयुक्त प्रतीत होता है। प्लेटो के कविता संबंधी विचारों पर अनेक विद्वानों का यह मत है कि प्लेटो ने कविता पर दो प्रमुख आक्षेप किए हैं।

पहला– उनके अनुसार, कला प्रकृति की अनुकृति है। अर्थात कला बुद्धिपूर्ण अनुकृति द्वारा प्राकृतिक वस्तुओं की यथावत नकल होती है। चित्रकला भी इसका अच्छा उदाहरण है। प्लेटो के अनुसार, यह दृश्यमान संसार (अर्थात व्यवहार जगत) वास्तविक वैचारिक जगत (Ideal) की प्रतिकृति है। उदाहरणस्वरूप, जिस कुर्सी पर आप बैठे हुए हैं, इसका निर्माण किसी बढ़ई ने उस आदर्श (नमूने) के अनुसार किया है, जो उसको दिया गया था। यहां प्लेटो का तर्क इस प्रकार है कि यह व्यवहार जगत वास्तविक जगत की नकल है। चित्रकार अथवा बढ़ई के द्वारा उसकी नकल को और भी अधिक नकल किया गया है। इस प्रकार नकल तो नकल है। चित्रकार के द्वारा बनाया गया चित्रकला नकल की नकल है। अर्थात वह सत्य से दोगुना दूर है और सत्य से दोगुना दूर होने के कारण वह हेय है, अतः हमें उसकी ओर ध्यान नहीं देना चाहिए।

दूसरा– इसी तरह कविता श्रृंगार और सौंदर्य की भावना के कारण श्रेय से दूर रहती है और करुणा, घृणा आदि कटुभाव चित्र को विकृत या उद्वेलित करती है। प्लेटो के लिए काव्य का आकर्षक, सौंदर्यपूर्ण, प्रेममय या

पवित्र होना कोई मूल्य नहीं रखता। उसके लिए साहित्य, कला का मूल्य तभी तक है, जब तक मनुष्य को अच्छा नागरिक बनने के लिए उपयोगी सिद्ध होता है, तब तक कला का महत्व है। इसलिए प्लेटो का विचार है कि जब काव्य का आधार असत्य है, तो फिर उसकी सामाजिक उपादेयता का संदिग्ध होना स्वाभाविक है। इसलिए प्लेटो ने अपने विचारों में यह प्रतिपादित किया है कि काव्य समाज के लिए हानिकारक है, क्योंकि उसका आधार मिथ्या है। काव्य का आधार न होने के कारण वह उपयोगी कैसे हो सकता है? इन्हीं कारणों से प्लेटो ने यह फतवा जारी किया था कि एक आदर्श गणतंत्र में कवियों का कोई स्थान नहीं है। उसमें केवक दार्शनिक और विचारकों को महत्व मिलना चाहिए, गणितज्ञों को सम्मान मिलना चाहिए और संगीतज्ञ का आदर होना चाहिए। प्लेटो ने आदर्श गणतंत्र में संगीत को इसलिए महत्व दिया कि संगीत जनता को मानसिक शक्ति प्रदान करता है, क्योंकि आदर्श गणतंत्र में ऐसे नागरिक होना चाहिए, जो शरीर और मन दोनों से सशक्त हो। इसलिए संगीत के द्वारा नागरिकों के शरीर और मन को सशक्त करने वाले संगीतज्ञ को सम्मान मिलना चाहिए। कवियों द्वारा यदि किसी काव्य में देवताओं का प्रशस्ति गान व स्तुतियां एवं श्रेष्ठ व्यक्तियों का प्रशस्ति गान हो, तो उसे भी स्वीकार कर लेना चाहिए। अर्थात ऐसे काव्य, जिनमें देवताओं का प्रशस्ति गान एवं श्रेष्ठ व्यक्तियों का प्रशस्ति गान किया गया हो, वह नागरिकों के लिए उपयोगी एवं प्रभावी हो सकता है।

प्लेटो के अनुकृति सिद्धांत संबंधित अन्य विचार

प्लेटो संगीत को विशेष महत्व देते थे। लय को वे एक नियमित गति मानते थे, क्योंकि लय किसी सिद्धांत पर आधारित होते हैं। यही बात काव्य रूप और शैली के संबंध में भी कही जा सकती है। लय और काव्य रूप अच्छे भी होते हैं और बुरे भी होते हैं। प्लेटो का विचार है कि अच्छाई और बुराई का संबंध अच्छे चरित्र और उनके कार्यों से होता है। अतः अच्छी रचना वही है, जिसमें सच्चाई के साथ अच्छे चरित्र का वर्णन हो। प्लेटो के अनुसार, जो काव्य कला या चित्रकारी मंगलकारी होती है, वह उत्तम एवं स्वागतेय है और काव्य कला या चित्रकारी का जो रूप अमंगलकारी होता है, इसका अनुकरण अपूर्ण एवं अधूरा होने पर ग्रहण करने योग्य नहीं। वह सत्य से परे, हानिकारक एवं त्याज्य है।

प्लेटो के काव्य विषयक चिंतन से स्पष्ट होता है कि वे काव्य को हल्के मनोरंजन से अधिक महत्व उपदेशात्मकता को देते हैं। श्रेष्ठ काव्य वह नहीं है, जो पाठकों का हल्का मनोरंजन करके थोड़े समय का सुख प्रदान करता है। बल्कि श्रेष्ठ काव्य वह है, जो पाठको में उदात्त भावनाओं को जागृत करके चरित्र का निर्माण करता है। प्लेटो के अनुसार, कविता का मुख्य प्रयोजन मानव चरित्र को प्रभावित करना एवं चरित्र निर्माण करना है तथा इसके साथ कविता द्वारा आत्मा की प्रच्छन्न शक्तियों को प्रकाश में लाना स्वीकार किया है। कविता के माध्यम से मनुष्य को अपना जीवन श्रेष्ठतम बनाने और जगत के पुनर्निर्माण हेतु योग्य बनाने की ओर भी संकेत मिलता है। इस प्रकार प्लेटो ने काव्य कला को कठोर संयम और आत्म नियंत्रण पर आधारित माना है तथा उसकी कसौटी सत्य को बताया है। प्लेटो की सर्वाधिक महत्वपूर्ण देन यह है कि उन्होंने मनुष्य को चिंतन की दिशा में प्रेरित कर उसे आलोचना प्रणाली की ओर उन्मुख किया है।

प्लेटो का यह भी मानना है कि जब हम आपत्ति में फंसे होते हैं, दुखी और शोकग्रस्त होते हैं, तब हम रोते और विलाप करते हैं। उस समय जो हमें सांत्वना देता है और हमारे दुख का शमन करता है, उसका हम स्वागत करते हैं। दुख और शोक का शमन करना ही मानव को सुख, शांति देने वाला तथा सत्कार्य में प्रवृत्त करने वाला होता है। पर कविता हमारी इस प्रकार के सुख, दुख, क्रोध की भावनाओं को और भी उभारती है एवं उत्तेजित करती है, उनका शमन नहीं करतीघ। कविता अपनी मधुर शब्दावली तथा लयात्मक भाषा के प्रभाव से मनुष्य को उद्दंड और असंयत, कामी, क्रोधी और झगड़ालू बनाती है, जो किसी भी राज्य व्यवस्था के लिए हानिकारक है। हम उस कविता का स्वागत करते हैं, जो आनंद प्रदान करने के साथ–साथ लोगों में संयम, सद्भाव, नैतिकता और सदाचार के भावों को भी प्रेरित करें। कविता का उद्देश्य लोगों की आत्मा में संयम और न्यायप्रियता, कर्तव्यनिष्ठा एवं सद्भावना के संस्कार डालना तथा अन्याय, असंयम, दुराचार और अपराध की प्रवृत्तियों को दूर करना है। इस प्रकार कविता का मंगलकारी स्वरूप राज्य के लिए लाभप्रद होता है एवं कविता का अमंगल कारी रूप राज्य के नागरिकों में विभिन्न प्रकार के अवगुणों को उत्पन्न करने वाला अनुपयोगी होता है।

प्लेटो ने कविता और कला में वस्तु के साथ–साथ उनके रूप (Form) को भी महत्वपूर्ण बतलाया है। काव्य में लय और छंद को भी विशेष महत्व देते हैं, पर रूप के तत्त्वों, भाषा, लय तथा कथा के संगठन को औचित्य पूर्ण एवं तर्कसंगत होने की बात कहते हैं।

उपसंहार

उपरोक्त विचारों से ज्ञात होता है कि प्लेटो की काव्यशास्त्रीय दृष्टि समाज परक एवं नैतिक है। उनके विचार से कविता का न्याय, व्यवस्था, संयम, अनुशासन में कोई योगदान नहीं।

अतएव प्लेटो का काव्य–नाटक विषयक विरोध साहित्येतर और नैतिक प्रतिमानों से प्रेरित है। उनके विचार से काव्य सृजन एक प्रकार का ईश्वरीय उन्माद है। कवि उन्मात्त व्यक्ति है और देवीय द्वारा अंतरूप्रेरित होकर काव्य रचना करता है। प्लेटो बार–बार इस बात की ओर संकेत करते हैं कि साहित्य में मनुष्य के नैतिक पक्ष को संपन्न, समृद्ध और संतुष्ट करने की शक्ति होनी चाहिए। इस दृष्टि से वे नैतिकतावादी ही नहीं उपयोगितावादी भी हैं। उनकी दृष्टि में सुंदर वही है, जो सत्य और विश्वास से संपन्न है। इसलिए प्लेटो काव्य की मंगलकारी रूप को उपयोगी मानते हैं एवं काव्य के अमंगलकारी रूप, जिससे नागरिकों में विभिन्न प्रकार के अवगुणों के उत्पन्न होने की संभावना होती है, को वे उपेक्षित तथा त्याज्य मानते हैं।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. डॉ. नागेंद्र, अरस्तु का काव्यशास्त्र, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय।
2. डॉ. देवेंद्र नाथ शर्मा, पाश्चात्य काव्यशास्त्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
3. रामचंद्र तिवारी, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र की रूपरेखा, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद–1।
4. डॉ. रामअवध द्विवेदी, साहित्य सिद्धांत, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना।
5. डॉ. नगेंद्र और डॉ. सावित्री सिन्हा (संपादक), पाश्चात्य काव्य की परंपरा, हिंदी माध्यम कार्यालय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली।
6. डॉ. ए. उस्मान खान, पाश्चात्य काव्यशास्त्र, डी. डी. सी. ई. उत्कल विश्वविद्यालय।
7. विकीपीडिया।

■■

(2)

अरस्तु : अनुकरण सिद्धांत एवं त्रासदी विवेचन

गोवर्धन प्रसाद सूर्यवंशी

अरस्तु यूनान के एक प्रसिद्ध दार्शनिक हैं। अनुकरण सिद्धांत और त्रासदी विवेचन पर उनका विस्तृत चिंतन मिलता है। अरस्तु बचपन से ही मेधावी एवं कुशाग्र बुद्धि के साथ विद्या अध्ययन में पारंगत थे। अरस्तु अपने गुरु प्लेटो से अत्यंत प्रभावित थे। प्लेटो द्वारा स्थापित विद्यापीठ में अध्ययन करते हुए अरस्तु ने अनेक विधाओं में अध्ययन किया। वे एक ओर प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो के शिष्य थे, तो दूसरी ओर विश्व विजेता सिकंदर के गुरु थे।

अरस्तु का व्यक्तित्व एवं दृष्टिकोण

अरस्तु का जन्म मकदूनिया के समुद्र तट पर स्थित यूनानी उपनिवेश में अत्यंत प्रतिष्ठित परिवार में 384 ई. पू. मे हुआ था। इस परिवार में वंश परंपरा से वैद्य की आजीविका चली आ रही थी। अरस्तु के पिता मकदूनिया के राज्य वैद्य थे। अरस्तु बचपन से ही अत्यंत मेधावी कुशाग्र बुद्धि एवं अध्ययनशील थे। किशोरावस्था में एथेंस जाकर प्लेटो के द्वारा स्थापित अकादमी में दाखिल हो गए, जहां पर उन्होंने 20 वर्ष की आयु तक अध्ययन किया। अरस्तु प्लेटो की विचारधारा से बहुत अधिक प्रभावित थे। वह एक ओर प्रसिद्ध वैज्ञानिक, दार्शनिक प्लेटो के शिष्य थे, तो दूसरी ओर विश्व विजेता सिकंदर महान का गुरु होने का गौरव भी उन्हें प्राप्त है। अरस्तु ने

---

* जन्म तिथि : 22 सितम्बर 1975, माता : श्रीमती इतवारा देवी सूर्यवंशी, पिता : श्री घासी राम सूर्यवंशी, पत्नी : श्रीमती रजनीगंधा सूर्यवंशी, शैक्षणिक योग्यता : एम. ए. (हिन्दी, राजनीति शास्त्र), बी. एड., नेट, सेट, सम्प्रति : सहायक प्राध्यापक (हिन्दी), शासकीय महाविद्यालय बतौली, जिला– सरगुजा (छ.ग.), मो. : 9755724330, मेल आई डी : govardhanji40@gmail.com

अपने जीवन काल में अनेक ग्रंथों का सृजन किया, जिसमें चार प्रमुख है। इन कृतियों में तर्कशास्त्र, भौतिक शास्त्र, मनोविज्ञान, ज्योतिष विज्ञान, राजनीति शास्त्र, आचार शास्त्र, काव्यशास्त्र सहित अनेक विषयों की सारगर्भित विवेचना मिलती है। अरस्तु के द्वारा लिखित साहित्य संबंधी विचार ''काव्यशास्त्र'' (Poetics) एवं ''भाषण शास्त्र'' (Rhetorics) में उपलब्ध होते हैं। इनकी उपलब्ध रचनाओं में साहित्य से संबंधित दो ग्रंथ उपलब्ध हैं, इनमें से ''पेरिपोइएतिकेस'' काव्यशास्त्र से संबद्ध है और ''तेखनेस रितिरिकेस'' भाषण कला या भाषण शास्त्र से संबंद्ध है। इन रचनाओं में भाषा और अभिव्यक्ति पर अरस्तु के विस्तृत विचार उपलब्ध हैं।

अरस्तु का अनुकरण सिद्धांत और प्लेटो के विचारों की संबद्धता

अरस्तु ने साहित्यिक रचनाओं को वर्तमान परिस्थितियों के अनुरूप सामने रखकर साहित्यिक दृष्टि से साहित्य का विवेचन किया। जबकि प्लेटो की विचारधारा आदर्शवाद पर आधारित थी, जिसके कारण प्लेटो की साहित्य संबंधी मान्यताओं में आदर्शवादी दार्शनिक दृष्टिकोण दृष्टिगोचर होता है, जिसमें साहित्यिक सत्यों की उपेक्षा दिखाई देती है, इसलिए प्लेटो ने कवि और काव्य पर कई आक्षेप भी लगाए हैं। दूसरी ओर अरस्तू की दृष्टि वस्तुवादी थी। उन्होंने साहित्यिक रचनाओं का मूल्यांकन वर्तमान परिस्थितियों के अनुरूप सामने रखकर किया। इस कारण उन्होंने अपने गुरु प्लेटो द्वारा कविता पर लगाए गए आरोपों का उत्तर तो दिया ही, साथ ही अनेक मौलिक चिंतनों की स्थापना भी की।

अरस्तु ने काव्य रचना के प्रेरक तत्व, काव्य की प्रकृति, संरचना, प्रकार्य और प्रभाव आदि सभी बिंदुओं पर विचार किया। इन सभी बिंदुओं में से सबसे अधिक बल उन्होंने त्रासदी पर दिया। अपने गुरु प्लेटो से ग्रहण किए हुए ज्ञान को अरस्तु ने अपने मौलिक विचारों की कसौटी पर कसकर ग्रहण किया, इसी कारण काव्य पर प्लेटो द्वारा लगाए गए आक्षेपों का वे उत्तर भी दे सके।

अरस्तु एक प्रतिभाशाली विचारक थे, जिसके चिंतन में गहनता, गंभीरता, सारग्रहणीयता और मौलिकता का समावेश था। उनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक था तथा बाह्य जगत की ठोस वास्तविकताओं पर आधारित था। अरस्तु ने साहित्य की संरचना तथा नियमों को स्थिर करके भावी साहित्य

सृजन के लिए दिशा का निर्धारण किया। अरस्तु काव्य के प्रसंग में अपने गुरु प्लेटो के अनेक विचारों से असहमत थे। अरस्तु प्लेटो की तरह अनुकरण को निंदनीय या हीन नहीं मानते थे। इसके अलावा अनुकरण की प्रकृति को लेकर भी उनकी दृष्टि प्लेटो से भिन्न थी।

प्लेटो के अनुसार काव्य कला का अनुकरण नहीं है। प्लेटो काव्य को कला से तीन गुना दूरी पर रखकर काव्य का मान घटा देते थे, जबकि अरस्तु अनुकरण को पुनर्रचना का समावेश बताते हैं और प्रकृति की हूबहू नकल न मानकर उसे पुनः प्रस्तुत करने के रूप में लेते हैं। अर्थात अनुकरण के द्वारा कलाकार सार्वभौम को पहचान कर उसे सरल तथा इंद्रिय रूप में पुनः रूपागत करने का प्रयास करता है। इस तरह कवि प्रतीयमान, संभाव्य और आदर्श तीनों रूपों का आश्रय लेकर अनुकरण के लिए स्वतंत्र संवेदना, ज्ञान, कल्पना और आदर्श के द्वारा अपूर्ण स्वरूप को पूर्ण बनाने का प्रयत्न करता है।

अरस्तु के काव्यशास्त्र संबंधी महत्वपूर्ण सिद्धांत

अरस्तु के काव्य सिद्धांत संबंधी विचारों में अनेक मौलिक चिंतन मिलता है। अरस्तु ने अनेक महत्वपूर्ण मौलिक चिंतन तथा कार्य किए हैं, जिनका उल्लेख उनके प्रसिद्ध ग्रंथ पोएसिस में मिलता है। इसमें उन्होंने त्रासदी (ट्रेजेडी), महाकाव्य (एपिक) तथा सुखात्मक नाटक (कामेडी) की चर्चा अनुकरणात्मक काव्य के रूप में की है, जिसका आशय यह है कि उन्होंने कार्य के सभी रूपों को अनुकरणात्मक माना है। इन सभी रूपों में त्रासदी (ट्रेजेडी) को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। अरस्तु ने त्रासदी (ट्रेजेडी) का विस्तृत विवेचन पोएटिक्स के 14 अध्यायों (छठे से उन्नीसवें अध्याय) में किया है। त्रासदी के प्रयोजन की चर्चा के क्रम में ही उनका प्रसिद्ध विरेचन सिद्धांत भी सामने आया है। अरस्तु के चिंतन ने यूरोपीय काव्यशास्त्र पर सर्वाधिक प्रभाव डाला है। उनके द्वारा प्रतिपादित ''काव्य सिद्धांत'' आज भी प्रासंगिक हैं। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि उन्होंने मानव–मनोविज्ञान और अंतः प्रकृति को दृष्टि में रखकर अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। उनका पूरा काव्य चिंतन महत्वपूर्ण है, परंतु जिस स्थापना को लेकर विचारकों ने सर्वाधिक चर्चा की है एवं जिनकी व्याख्या विवादास्पद रही हैं, उनमें दो सिद्धांत प्रमुख है– 1. अनुकरण सिद्धांत (Theory of Imitation),

2. विरेचन का सिद्धांत (Theory of cathars is)

अरस्तु का अनुकरण सिद्धांत

प्लेटो ने काव्य को जीवन का अनुकरण मानते हुए इस क्रिया के लिए ग्रीक शब्द ''मोमेसिस'' का प्रयोग किया था, जिसका अंग्रेजी अनुवाद ''इमिटेशन'' (Imitation) है। हिंदी में इमिटेशन (Imitation) का अनुवाद ''अनुकरण'' किया गया है।

''अनुकरण'' के सिद्धांतों पर चर्चा करने पर ज्ञात होता है कि प्लेटो की दृष्टि दार्शनिक और नैतिकतावादी थी, जबकि अरस्तु की दृष्टि सौंदर्यशास्त्रीय। इससे स्पष्ट होता है कि साहित्यशास्त्रीय चर्चा के लिए सौंदर्यशास्त्रीय दृष्टि अधिक उपयुक्त है। अरस्तु की अनुकरण संबंधी मान्यताओं को साहित्य शास्त्र में इतना महत्व दिया जाता है, परंतु अनुकरण संबंधी अवधारणा तथा प्रकृति की कहीं पर भी स्पष्ट व्याख्या नहीं की गई है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि अरस्तु के उपलब्ध साहित्य में कहीं भी अनुकरण संबंधी मान्यताओं पर स्वतंत्र रूप से विचार का प्रतिपादन दिखाई नहीं देता, फिर भी अरस्तु का अनुकरण सिद्धांत पाश्चात्य साहित्य में एक महत्वपूर्ण अवधारणा के रूप में माना जाता है।

अनुकरण का अर्थ

अरस्तु के अनुसार ''अनुकरण'' मानव स्वभाव की मूल प्रवृत्ति है। अनुकरण की शक्ति पशुओं में नहीं, केवल मानवों में ही होती है और इसी के माध्यम से मनुष्य संसार का ज्ञान हासिल करते हैं। कविता का उत्स भी मानव की सहज प्रवृत्तियों का सहज संबंध है।

अरस्तु ने कला को ''प्रकृति की अनुकृति'' ही माना है। उनके लिए अनुकरण प्रकृति के बाहर रूपों का नहीं, बल्कि उसकी सर्जन प्रक्रिया का अनुकरण है। यह बाहरी जगत से सामग्री चुनता है और उसे अपने तरीके से छांटकर और तराश कर इस प्रकार पुनः संयोजित करता है कि वह कलात्मक अनुभूति को जन्म देती है। इसके लिए उसे विशिष्ट संवेदनशीलता और कल्पना का सहारा भी लेना पड़ता है। प्रकृति में जो कुछ अपूर्ण रह जाता है, उसे वह पूर्ण रूप से प्रस्तुत कर सकता है और इस प्रकार वह प्रकृति का भी अतिक्रमण करता है। अतः अनुकरण की प्रक्रिया को अरस्तु

सामान्य नकल से ऊपर सृजनशीलता मानते हैं। अर्थात अनुकरण ''प्रकृति की अनुकृति'' ही नहीं होती, बल्कि प्रकृति की अपूर्णता को अनुकरण के द्वारा पूर्ण किया जाता है, जिसके लिए अनुकर्ता को संवेदनशीलता और कल्पना के पुट का समावेश भी करना पड़ता है। इसलिए अनुकरण सामान्य ''नकल'' न होकर उससे ऊपर ''सृजनशीलता'' है।

अरस्तु अनुकरण को काव्य का ''साधक'' ही नहीं, काव्य के आनंद का ''नियोजक'' भी मानते हैं। आनंद को वे काव्य का मुख्य प्रयोजन मानते हैं। काव्य अनुकरण के माध्यम से सृजित किया जाता है, इसलिए उसमें बाह्य संसार का चित्रण भी होता है। काव्य का आस्वाद करते हुए श्रोता पाठक को जब उसमें अपने जाने–पहचाने संसार की झलक मिलती है, तो उसे एक विशेष प्रकार का आनंद होता है। प्रत्यभिज्ञान या पहचान का आनंद श्रोता को अनुकरण की वजह से ही हो पाता है, जिसमें कवि की कल्पनाशीलता और सृजनशीलता सम्मिलित रहती है। इसी के आधार पर कवि प्रकृति के कार्यों में दिख रही अपूर्णता को पूर्ण करता है।

अरस्तु के अनुसार काव्य की विषय वस्तु

अरस्तु के अनुसार, काव्य की विषय वस्तु का चित्रण तीन रूपों में हो सकता है–

1. प्रतीयमान, अर्थात वस्तुएं वास्तव में जैसी हैं या दिखाई देती है।
2. संभाव्य, अर्थात वस्तुएं जैसी हैं नहीं, मगर हो सकती है।
3. आदर्श, अर्थात वस्तुओं को जैसा होना चाहिए।

इस तरह कविता, जहां प्रथम वर्ग का चित्रण करती है, वहां उसे यथातथ्य अनुकरण माना जा सकता है किंतु द्वितीय और तृतीय वर्ग में जिन स्थितियों का चित्रण होता है, वे वास्तविक जगत में होती ही नहीं, इसलिए उनके चित्रण में बाह्य जगत का अनुकरण करने का प्रश्न ही नहीं उठता। इनमें कवि बाह्य जगत को आधार बनाता है, किंतु कल्पनाशीलता तथा आदर्श भावना का सहारा लेकर उस वस्तु का चित्रण इस प्रकार करता है कि वह बाह्य जगत, इंद्रियगोचर जगत की सीमा से बहुत ऊपर उठ जाती है। अरस्तु अपने सिद्धांतों में ऐसी रचनाओं को स्वीकृति देते हैं इससे स्पष्ट हो जाता है कि वह अनुकरण को सर्जनात्मक मानते हैं।

अनुकरण के संबंध में अरस्तु का दृष्टिकोण भी नैतिक और सामाजिक की अपेक्षा सौंदर्यशास्त्रीय है (जो प्लेटो का दृष्टिकोण है)। काव्य या कला प्रकृति की अनुकृति है, पर एकदम नकल न होकर उसका पुनः प्रस्तुतिकरण है। अतः काव्य या कला में उतारा गया प्रकृति का रूप, वास्तविक रूप की कमी को दूर कर उसे अधिक पूर्ण रूप प्रदान करता है। कवि या कलाकार प्रकृति के तीन रूपों में किसी का भी वर्णन करने में स्वतंत्र है–

1. जैसी वह है या दिखाई देती है।
2. जैसी वह समझी जाती है।
3. जैसी उसे होना चाहिए।

प्लेटो इसके तीसरे रुप को कला में स्थान देने के पक्षधर थे, जबकि अरस्तु तीनों प्रकार के अनुकृत रूपों को मान्य करते हैं। अरस्तु के विचार से अनुकरण वास्तव में कल्पना द्वारा जीवन की पुनः सर्जना है।

अरस्तु ने कथानक के तीन प्रकार माने माने हैं– ऐतिहासिक, दंतकथा मूलक और कल्पित। इन कथानकों में ऐतिहासिक तथा दंत मूलक कथानक की सामग्री तो रचनाकार बाह्य जगत से ले सकता है और इस प्रकार की सामग्री लेने का अनुकरण भी उनकी अपनी सृजनात्मकता से ही उपज सकता है।

इतिहास और काव्य की तुलना

इतिहास और काव्य की तुलना करते हुए अरस्तु ने काव्य के सत्य को इतिहास के तथ्य से ऊँचा माना है (Poetry is more philosophical and higher thing than a history) इसके पीछे उन्होंने निम्न कारण बताया–

1. इतिहास केवल उन्हीं घटनाओं का उल्लेख करता है, जो घटित हो चुकी हैं। जबकि काव्य संभाव्य तथा आदर्श स्थितियों का अंकन भी करता है।

2. इतिहास केवल बाह्य जगत की घटनाओं का उल्लेख तथा विवेचन करता है, इसलिए वह मात्र ''विशेष'' की ही अभिव्यक्ति करता है। इसके विपरीत काव्य का सत्य घटना विशेष तक सीमित न रहकर ''सामान्य'' होता है। अर्थात इतिहास में किसी खास व्यक्ति या घटना का वर्णन होता है, जबकि काव्य किसी विशेष पर आधारित न होकर सामान्य का वर्णन भी हो

सकता है।

3. इतिहास वस्तुपरक होता है, जबकि काव्य रचना में अनुभूति तथा विचार का आश्रय लिया जाता है। इसके अतिरिक्त श्रेष्ठ काव्य में दर्शन तत्व की प्रधानता होती है।

4. ''पोएटिक्स'' के पच्चीसवें अध्याय में व्यवहारिक आलोचना की समस्याओं पर विचार करते हुए अरस्तु ने चित्रकार अथवा किसी अन्य कलाकार की तरह कवि को भी अनुकर्ता माना है। कवि के अनुकार्य का विवेचन करते हुए उन्होंने कहा है कि ''चित्रकार अथवा किसी भी अन्य कलाकार की तरह कवि अनुकर्ता है, अतएव उसका अनुकार्य अनिवार्यतः इन तीन प्रकार की वस्तुओं में से ही कोई एक हो सकता है। जैसी– वे थी या हैं, जैसी वे कही या समझी जाती हैं अथवा जैसी वे होनी चाहिए। अभिव्यक्ति का माध्यम है– भाषा, जिसमें प्रचलित शब्द हो सकते हैं या अप्रचलित अथवा लाक्षणिक भाषा में भी कई प्रकार के रूपांतर किए जा सकते हैं, जिनका अधिकार केवल अनुकर्ता अर्थात कवि को है।''

अरस्तु के अनुसार अनुकरण का स्वरूप

उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम समझ सकते हैं कि अरस्तु काव्य को बाह्य यथार्थ के अनुकरण मात्र के रूप में नहीं देखते थेप् यदि ऐसा होता, तो काव्य तथा इतिहास में इतना फर्क न करते। अरस्तु के अनुसार काव्य में अनुभूति, कल्पना तथा दार्शनिकता का योग रहता है और वह यथार्थ जगत की वस्तुओं तथा घटनाओं से आगे जाकर संभाव्यता का भी अंकन करता हैप् इससे यह स्पष्ट है कि उनकी दृष्टि में कविध्कलाकार अर्थात अनुकर्ता बाह्य जगत से प्राप्त विषयवस्तु में अपनी तरफ से भी बहुत कुछ जोड़ता है। इस प्रकार अनुकरण मात्र प्रतिबिंब का नहीं, बल्कि सर्जना का व्यापार है।

अरस्तु ने इस बात की ओर ध्यान दिलाया कि बाह्य जगत में जो वस्तुएं और स्थितियाँ हममें त्रास जगाती हैं, वही काव्य अथवा नाटक में इस प्रकार प्रस्तुत की जाती हैं कि करुणा तथा आतंक का निराकरण (विरेचन) करके, वे हमें आनंद प्रदान करती हैं। यह निराकरण विरेचन द्वारा संभव होता है, किंतु दुख के माध्यम से आनंद प्राप्त करने का विरोधाभास तभी समझा जा सकता है, जब हम काव्य के आनंद को यथार्थ जीवन के आनंद से भिन्न

और विशिष्ट माने। यह विशिष्टता यथार्थ को ज्यों–का–त्यों प्रतिबिंबित कर देने से नहीं आती। रचनाकार की सृजनशीलता रचना की विषय वस्तु को इस प्रकार संगठित तथा प्रस्तुत करती है कि श्रोता, पाठक और दर्शक की अनुभूतियां विशेष प्रकार से जागृत और समाहित होती हैं।

नाटक यथार्थ जीवन का अनुकरण करता है। किंतु इसके प्रभाव में यह विशिष्टता तभी आ सकती है, जब यह अनुकरण कलात्मक और सृजनात्मक हो। प्रसिद्ध समालोचक स्कॉट जेम्स ने इसे जीवन का पुनर्निर्माण कहा है।

अरस्तु के अनुसार, क्रियाशील मानव ही काव्य अर्थात अनुकरण का विषय होता है, किंतु उनका विवेचन यह भी संकेत करता है कि काव्य केवल बाह्य जगत में प्रत्यक्ष जीवन का ही नहीं, बल्कि सूक्ष्म, अमूर्त और आंतरिक जीवन का भी अनुकरण करता है। जीवन का यह पक्ष बाह्य जगत में प्रत्यक्ष नहीं होता। अतः इसके अनुकरण में अनुकर्ता को अनुभूति और कल्पना का सहारा लेना ही पड़ता है।

उपसंहार

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि अरस्तु अनुकरण को काव्य का अनिवार्य तत्व मानते थे, किंतु यह मशीनी अनुकरण नहीं था। इसमें दर्शन और विचार तत्व, अनुभूति और कल्पना के योग से विशिष्ट सृजनशीलता आ गई है। अरस्तु ने कवि को केवल अनुकर्ता न मानकर एक सर्जक माना है, जो प्रकृति द्वारा किए गए कार्यों की अपूर्णता को अनुकरण कर अपनी कल्पनाशीलता और सृजनशीलता से पूर्ण करने का प्रयास करता है।

अरस्तु का त्रासदी विवेचन

अरस्तु की साहित्य शास्त्रीय चर्चा में जिन विधाओं का बहुत विस्तार और गहराई से चर्चा या वर्णन मिलता है, वह है– त्रासदी (ट्रेजडी)। वस्तुतः अरस्तु के युग के पहले से ही यूनान में त्रासदी का रस विकसित हो चुका था और वही अरस्तु के विवेचन का आधार बना।

त्रासदी ग्रीक साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा थी। प्राचीन यूनान में ''दिओनिसिअस'' देवता को प्रसन्न रखने के लिए जो खेल तमाशे होते थे, उन्हें ही त्रासदी (ट्रेजेडी) का मूल रूप कहा जाता है। यद्यपि प्लेटो आदि विचारकों ने भी ट्रेजेडी के संबंध में अपने–अपने विचार प्रकट किए हैं, परंतु

अरस्तु ने ही सबसे पहले ट्रेजेडी का गंभीर, विस्तृत एवं सर्वांगीण विवेचन किया है और उनका यह विवेचन केवल मौलिक ही नहीं, अपितु आगामी विद्वानों को चिंतन और तात्विक विश्लेषण करने की प्रेरणा भी देता है। इस प्रकार अरस्तु ने पहली बार ट्रेजेडी की परिभाषा देते हुए कहा है– ट्रेजडी एक ऐसे कार्य का अनुसरण है, जो गंभीर है, स्वतरू पूर्ण है और जिसका एक निश्चित आयाम है। यह अनुकरण एक ऐसी भाषा में होता है, जो कलात्मक अलंकारों से हर प्रकार से सुसज्जित रहती है। कलात्मक अलंकारों की ये विविध प्रकार विभिन्न भागों में पाए जाते हैं। यह अनुकरण करुणा और भय के संचार से मनोवेगों को उत्तेजित कर उनका उचित विरेचन करता है। अलंकृत भाषा से यहां तात्पर्य है– ऐसी भाषा, जिसमें लय–सामंजस्य और गीत–सामंजस्य हो। नाटकों के विभिन्न भागों में इसके पाए जाने का तात्पर्य है कि कुछ भागों में केवल पद्य के माध्यम से गीत का प्रयोग किया जाता है।

प्रस्तुत परिभाषा के आधार पर त्रासदी की प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं–

1. त्रासदी ''कार्य की अनुकृति'' है।

2. इसमें वर्णित कार्य गंभीर होता है, स्वतः पूर्ण होता है (अर्थात पूर्ण होने के लिए उसे किसी अन्य तत्व पर निर्भर नहीं रहना पड़ता) इसका आयाम अर्थात क्षेत्र तथा विस्तार निश्चित रहता है।

3. यह समाख्यानात्मक (वर्णनात्मक) रूप में नहीं, बल्कि कार्य व्यापार के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

4. कार्य व्यापार की प्रधानता होते हुए भी इसका माध्यम भाषा होती है और वह भाषा नाटक के लिए उपयुक्त अलंकारों से युक्त होती है।

5. इसमें करुणा और त्रास का उद्रेक होता है और इस उद्रेक के द्वारा मनोविकारों का उचित विरेचन किया जाता है।

त्रासदी के तत्व

अरस्तु ने त्रासदी के छः तत्व माने हैं–

1. कथानक (Plot),
2. चरित्र (Character),
3. विचार (Thought),

4. पदविन्यास (Diction),

5. दृश्य विधान (Spectacle),

6. गीत (Song)।

अरस्तु ने इन सभी तत्वों का कमोबेश विस्तार से विवेचन किया है और इन सभी तत्वों का संबंध अनुकरण से किया है।

1. कथानक (Plot):

त्रासदी की विषय वस्तु ही कथानक है। इसका अर्थ है घटना–विन्यास। अरस्तु ने त्रासदी में सबसे अधिक महत्व इसी तत्व को दिया है। त्रासदी कार्य की अनुकृति है और कथानक उसी कार्य–व्यापार को प्रस्तुत करता है। यह व्यक्ति–चरित्र का नहीं घटनायुक्त जीवन के कार्य–व्यापार का, सुख–दुखमय प्रसंगों का अंकन है। त्रासदी का प्रभाव कार्य–व्यापार पर ही निर्भर करता है। इनके अन्य सब तत्व भी कार्य–व्यापार के ही साधक हैं। चरित्र कार्य–व्यापार के माध्यम के रूप में ही आते हैं। चरित्रों के बिना त्रासदी की योजना हो सकती है, कार्य–व्यापार के बिना नहीं। त्रासदी विवेचन में अरस्तु ने कार्य–व्यापार को प्रस्तुत करने वाले तत्व कथानक पर सबसे अधिक बल दिया है, क्योंकि अरस्तु की मूल दृष्टि वस्तुपरक थी। वस्तु जगत में तथा इसमें घटने वाली घटनाओं के प्रति उनका झुकाव स्वाभाविक ही था। इसके अतिरिक्त, जिन त्रासदियों को सामने रखकर अरस्तु ने अपना काव्यशास्त्र रचा था, वे भी कार्य–व्यापार प्रधान ही थी।

अरस्तु ने कथानक के तीन स्रोत या तीन प्रकार माने हैं– (क) दंतकथामूलक, (ख) कल्पना मूलक एवं (ग) इतिहासमूलक।

इसके साथ ही अरस्तु ने शिल्प की दृष्टि से कथानक के सरल एवं जटिल नामक दो भेद किए हैं और कथानक में आनुपातिक आवयविक संगठन के साथ–साथ एक निश्चित आयाम (Magnitude) भी आवश्यक माना है। इसी प्रकार उन्होंने कथानक में पूर्णता, एकान्वित संभाव्यता और आवश्यकता एवं सहज विकास नामक गुण आवश्यक कहे हैं।

2. चरित्र चित्रण (Character)

कार्य–व्यापार का निष्पादन चरित्रों के द्वारा होता है, इसलिए कथानक के बाद चरित्र ही अरस्तु की दृष्टि में सबसे महत्वपूर्ण तत्व है। चरित्र के

चित्रांकन के लिए अरस्तु ने चार बातों का ध्यान रखने के लिए कहा है–

1. चरित्र भद्र होना चाहिए और उनके माध्यम से नैतिक उद्देश्य की अभिव्यक्ति होनी चाहिए।

2. चरित्रों के अंकन में औचित्य या अन्विति का भी ध्यान रखा जाना चाहिए। (औचित्य या अन्विति का आशय है– किसी चरित्र में विसंगत या परस्पर विरोधी विशेषताएं नहीं दिखाई देनी चाहिए)।

3. चरित्रों में स्वाभाविकता तथा संभाव्यता होनी चाहिए, अर्थात जीवन के यथार्थ से उनका मेल हो।

4. चरित्र में आए परिवर्तन उनकी मूल प्रकृति के अनुरूप तथा स्वाभाविक हो, अर्थात चरित्र में परिवर्तन परिस्थितियों एवं कथानक के अनुकूल होना चाहिए।

अरस्तु ने चरित्र चित्रण के आदर्श एवं यथार्थ के कलात्मक समन्वय पर जोर देते हुए कहा है कि चरित्र यथार्थवत होते हुए भी कलाकार की कल्पना एवं भावुकता से अधिक सुंदर, नवीन, भव्य और मनमोहक बन उठे। अरस्तु के अनुसार त्रासदी के नायक को कुलीन, वैभवशाली, यशस्वी, समृद्ध एवं अत्यंत प्रभावशाली होना चाहिए, ताकि उसका चरित्र वृहतर समाज को भी प्रभावित करे।

3. विचार (Thought)

अरस्तु ने विचार के अंतर्गत केवल बुद्धि तत्व ही नहीं, बल्कि भावतत्व को भी सम्मिलित किया है। इसके अंतर्गत वक्ता के बौद्धिक चिंतन तथा उसके वक्तव्य के प्रमाण स्वरूप तर्क भी शामिल हुए। इस तर्क का साधन वाणी या भाषा है और विचारों को व्यक्त करने वाली भाषा भी विशिष्ट होनी चाहिए। भाव के स्तर पर यह करुणा, त्रास, क्रोध आदि की व्यंजना करता है और उनका मूल्यांकन भी।

4. पदविन्यास (Diction)

अरस्तु के युग में वक्तृत्व कला इतनी महत्वपूर्ण मानी जाती थी कि इसका विकास एक शास्त्र के रूप में हो गया था। त्रासदी में जो विचार तत्व निहित होता था, उसे अभिव्यक्त करने का माध्यम भी भाषा ही है। अरस्तु के अनुसार पदविन्यास का अर्थ था– शब्दों द्वारा अर्थ की अभिव्यक्ति। जिस

प्रकार त्रासदी के कथानक और चरित्र यथार्थ से उठकर, यथार्थ की अपेक्षा कुछ विशिष्ट होते हैं, उसी प्रकार उसकी भाषा मूलतः प्रचलित भाषा के होते हुए भी विशिष्ट होती है, ताकि वह त्रासदी के विचारतत्व में निहित सत्य को अभिव्यक्ति दे सके। वह भाषा अलंकृत होनी चाहिए, अर्थात उसमें लय, सामंजस्य और गीत का समावेश हो। वह प्रसाद गुण संपन्न, प्रसन्न, समृद्ध और उदात्त होनी चाहिए।

5. दृश्य विधान (Spectacle)

त्रासदी के कार्य–व्यवहार का संचालन यदि चरित्रों के माध्यम से होता है, तो उनकी प्रस्तुति दृश्य विधान के माध्यम से होना चाहिए। दृश्य विधान का अर्थ है– रंगमंचीय साधनों का कुशल प्रयोग। परंतु अरस्तु ने रंगमंचीय साधनों को अनिवार्य नहीं माना।

6. गीत (Song)

अरस्तु गीत को त्रासदी का अनिवार्य अंग मानते हैं। ग्रीक नाटकों में गायकों का समूह होता था, जो ''कोरस'' कहलाता था। ग्रीक नाटकों में वृंदगान (समूहगान) करने वाली इस कोरस की महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। अरस्तु के अनुसार नाटक में वृंदगान का महत्व किसी पात्र से कम नहीं था। वृंदगान नाटक में आनंद तथा गंभीरता की सृष्टि करता है और उसके प्रभाव की वृद्धि करता है।

इस तरह अरस्तु ने सभी विधाओं में त्रासदी को सर्वोच्च स्थान दिया है। कॉमेडी, महाकाव्य आदि अन्य विधाओं पर बातचीत में भी उन्होंने त्रासदी को ही संदर्भ बनाया है।

त्रासदी की भांति कॉमेडी भी एक नाट्यविधा है, किंतु वह जिस यथार्थ का चित्रण करती है, वह सामान्य से नीचे दर्जे का होता है।

अरस्तु ने त्रासदी को महाकाव्य से श्रेष्ठ माना है। इसका एक आधार यह था कि महाकाव्य का फलक बहुत विस्तृत होता है और उसकी कथा में अनेक प्रासंगिक कथाएं एक दूसरे से संबंद्ध होती है, इसलिए उसकी कथा और प्रभाव में बिखराव आता है। जबकि इसके विपरीत त्रासदी का कथापट संक्षिप्त तथा सुगठित होता है। गद्य काव्य की अनेक आधिकारिक–प्रासंगिक कथाओं में से कोई एक त्रासदी का विषय बन

सकती है, इसलिए त्रासदी में महाकाव्य की अपेक्षा अधिक सुगठन तथा अन्विति दिखाई देती है और त्रासदी का प्रभाव भी अधिक सघन होता है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. डॉ. नागेंद्र, अरस्तु का काव्यशास्त्र, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय।
2. डॉ. देवेंद्र नाथ शर्मा, पाश्चात्य काव्यशास्त्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली।
3. रामचंद्र तिवारी, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र की रूपरेखा, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद–1।
4. डॉ. रामअवध द्विवेदी, साहित्य सिद्धांत, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना।
5. डॉ. नगेंद्र और डॉ. सावित्री सिन्हा (संपादक), पाश्चात्य काव्य की परंपरा, हिंदी माध्यम कार्यालय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली।
6. डॉ ए. उस्मान खान, पाश्चात्य काव्यशास्त्र, डी.डी. सी. ई. उत्कल विश्वविद्यालय।
7. विकीपीडिया

■■

(3)

लोंजाइनस–उदात्त की अवधारणा

डॉ. शिवदयाल पटेल

लोंजाइनस के विषय में प्रामाणिक जानकारी का अभाव है। लोंजाइनस जन्म से यूनानी थे। उनका समय ईसा की प्रथम या तृतीय शताब्दी माना जाता है। लोंजाइनस के प्रसिध्द ग्रंथ ''पेरीइप्सुस'', जिसका प्रकाशन 1554 में रोबेरतेल्लो ने किया। इसके कई अनुवाद मिलते हैं। यथा– ''हाइट ऑफ इलोक्वेंस'' (वाणी की पराकाष्ठा–1662), ''लाफ्टीनेस ऑर एलीगेंसी ऑफ स्पीच'' (भाषा का लालित्य या उत्तुंगता) आदि। इसी के अनुरूप हिन्दी में ''काव्य में उदात्त तत्व'' डॉ. नगेन्द्र एवं नैमिचंद जैन की पुस्तकों में भी मिलता है। ''पेरीइप्सुस'' पत्र के रूप में पोस्तुमिउस तेरेन्तियानुस नामक एक रोमी युवक को संबोधित है, जो लोंजाइनस का मित्र या शिष्य रहा होगा। वस्तुतः पुनर्जागरण युग में 16वीं सदी में जब पहली बार ''पेरीइप्सुस'' कृति सामने आई, तब यह मत प्रचलित हुआ कि लोंजाइनस शास्त्रवाद से प्रभावित, तीसरी सदी में पालचीरा की महारानी जेनोविया के अत्यंत विश्वासपात्र यूनानी मंत्री थे। जिन्हें बाद में महारानी के लिए मृत्यु का वरण करना पड़ा। 1928 में स्काट–जेम्स ने इस मत को पुनःस्थापित करते हुए उन्हें पहला ''स्वच्छंदतावादी आलोचक'' कहा है। पश्चिम में लोजाइनस से पूर्व काव्यशास्त्रीय चिंतन की एक सुदृढ़ परम्परा का विकास प्लेटो तथा अरस्तु से ही माना जाता है। लोजाइनस ने इन दोनों की अवधारणाओं को

---

* जन्म : 03 जून 1971, शिक्षा : एम. ए., एम. एड., पी–एच. डी., नेट, सेट, सम्प्रति : सहायक प्राध्यापक (विभागाध्यक्ष–हिन्दी), शासकीय महाविद्यालय बरपाली, जिला– कोरबा, छ.ग., आवासीय पता : मकान क्र. बी–1378, कृष्णा विहार, एन टी पी सी कॉलोनी, जमनीपाली, कोरबा, छ.ग., पिन कोड– 495450, मो. : 9669128900, ई–मेल : patelshivdayal1@gmail.com

आत्मसात् करके एक नए काव्यशास्त्रीय विचार प्रस्तुत किए। जहाँ प्लेटो के लिए साहित्य ''उत्तेजक'', अरस्तु के लिए ''विरेचक'', वहीं लोंजाइनस के लिए ''उदात्त'' था। उनकी यह अवधारणा इतनी युगांतकारी सिद्ध हुई कि आगे चलकर उसे शास्त्रवाद, स्वच्छंदतावाद, आधुनिकतावाद और यथार्थवाद से जोड़कर देखा गया। लोजाइनस से पूर्व काव्य की महत्ता दो रूपों में मूल्यांकित की जाती थी– (1) शिक्षा प्रदान करना, (2) आनंद प्रदान करना। ''एरिस्टोफेनिस'' सुधारवाद का पक्षधर था और ''होमर'' मनोरंजन का। अतः साहित्य (काव्य और गद्य) दोनों का आधार था– ''To instruct, to delight, to persuade" अर्थात् शिक्षा देना, आह्लादित करना और प्रोत्साहित करना। उस समय तक काव्य में आलंकारिक, चमत्कारिक और आडम्बरपूर्ण भाषा–शैली को महत्व दिया गया था, भाव तत्व को नहीं। लोंजाइनस ने इस ओर ध्यान केंद्रित किया।

लोंजाइनस का उदात्त–तत्व

लोजाइनस ने उदात्त तत्व की स्वतंत्र एवं व्यापक व्याख्या नहीं की है, बल्कि उसे एक स्वतरू स्पष्ट तथ्य मानकर छोड़ दिया है। उनका मत है कि उदात्तता साहित्य के सब गुणों में महान हैय यह वह गुण है, जो अन्य छोटी–छोटी त्रुटियों के बावजूद साहित्य को सच्चे अर्थों में प्रभावपूर्ण बना देती है। उदात्त को परिभाषित करते हुए लोंजाइनस कहते हैं– ''अभिव्यक्ति की विशिष्टता और उत्कर्ष ही औदात्य है। (Sublimity is always an eminence and excellence in language.) ''उदात्त अभिव्यंजना का अनिर्वचनीय प्रकर्ष और वैशिष्ट्य है।'' यही वह साधन है, जिसकी सहायता से महान कवियों या इतिहासकारों ने ख्याति और कीर्ति अर्जित की है। उनका कहना है कि उदात्त का प्रभाव श्रोताओं के अनुनयन (मनोरंजन) (persuasion) में नहीं, बल्कि सम्मोहन (entrancement) में दृष्टिगोचर होता है। जो केवल हमारा मनोरंजन करता है, उसकी अपेक्षा वह निश्चय ही अधिक श्रेष्ठ है, जो हमें विस्मित कर सर्वदा और सर्वथा सम्मोहित कर लेता है। अनुनयन (मनोरंजन) हमारे अधिकार की चीज है, अर्थात् अनुनीत (मनोरंजीत) होना या न होना हमारे हाथ में है, किंतु उदात्त तो प्रत्येक श्रोता को अप्रतिरोध्य शक्ति (irresistible force) से प्रभावित कर अपने वश में कर लेता है। सर्जनात्मक कौशल और वस्तुविन्यास पूरी रचना में आद्योपांत

वर्तमान रहते हैं और क्रमशः शनैः शनैः उभरते हैं, किंतु बिजली की कौंध की तरह सही समय पर उदात्त की एक कौंध, पूरे विषय को उद्‌भासित कर देती है। वे कहते हैं कि कला में उदात्त किसी विशेष भाव या विचार के कारण नहीं, बल्कि अनेक ''विरूध्दों के सामंजस्य'' अथवा भावों के संघात से उत्पन्न होता है। लोंजाइनस उदात्त की उत्पति के लिए केवल प्रतिभा को ही पर्याप्त नहीं मानते, उसके साथ ज्ञान (व्युत्पति) को भी आवश्यक बताते हैं। तात्पर्य यह है कि उदात्त नैसर्गिक ही नहीं, उत्पाद्य भी है। प्रतिभा के अतिरिक्त ज्ञान और श्रम से भी उसकी सृष्टि संभव है। लोंजाइनस ने कवि के व्यक्तित्व को वरीयता देते हुए रचना की भव्यता को रचनाकार से सम्बद्ध कर दिया। यह उनकी महत्वपूर्ण देन है। इन्हीं संदर्भो में ''स्कॉट जेम्स'' ने लोंजाइनस को प्रथम स्वच्छंदतावादी आलोचक माना है।

उदात्त के स्वरूप

उदात्त के स्वरूप को इस प्रकार से समझ सकते है–

- औदात्त्य अभिव्यक्ति की उच्चता व उत्कृष्टता का नाम है।
- अभिव्यक्ति की उच्चता पाठक या श्रोता के तर्क का समाधान नहीं करती, अपितु उसे भावाभिभूत कर लेती है।
- रचना का औदात्त्य पाठक को अनायास ही अपने प्रबल प्रवाह में बहा ले जाता है।
- किसी रचना का शिल्प उसके एक या दो अंशों से नहीं, बल्कि संपूर्ण रचना विधान से धीमे–धीमे प्रकाश में आता है। यदि उदात्त विचार अवसर के अनुकूल आ जाए तो एकाएक विद्युत की भांति चमक कर संपूर्ण विषय वस्तु को आलोकित कर देता है। क्षण भर में वक्ता का समस्त वाग्वैभव प्रकाशित हो जाता है।
- लोंजाइनस का विचार है कि महान विद्वान, प्रतिभावान एवं उच्च चरित्रवान ही उदात्त रचनाएँ दे सकते हैं। वे कहते हैं, ''औदात्त्य आत्मा की महानता का प्रतिबिंब होता है।'' सच्चा औदात्त्य केवल उन्हीं में प्राप्य है।
- महान रचनाएँ वही दे सकता है, जिसकी कल्पना शक्ति उर्वर हो, जिसे मार्मिक स्थलों की पहचान हो और जो मानव हृदय में प्रवेश कर

संवेदनाओं को पकड़ने की क्षमता रखता हो।

- जिनकी चेतना औदात्त्य एवं विकासोन्मुख है, जिनका जीवन तुच्छ एवं संकीर्ण विचारों के अनुसरण में व्यतीत होता हैय वे कभी भी मानवता के स्थायी महत्व की रचना नहीं दे सकते।

उदात्त–तत्व के स्रोत

लोंजाइनस ने उदात्त तत्व के विवेचन में पाँच तत्वों को आवश्यक माना है।

1. महान धारणाओं की क्षमता या विषय की गरिमा।
2. भावावेश की तीव्रता।
3. समुचित अलंकार योजना।
4. उत्कृष्ट भाषा।
5. गरिमामय रचना विधान।

इनमें से प्रथम दो जन्मजात (अंतरंग पक्ष) तथा शेष तीन कलागत पक्ष (बहिरंग पक्ष) के अन्तर्गत आते हैं। उन्होंने अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए उन तत्वों का भी उल्लेख किया है, जो औदात्य के विरोधी हैं। इस प्रकार उनके उदात्त के स्वरूप–विवेचन के तीन पक्ष हो जाते हैं–

(1) अन्तरंग तत्व, (2) बहिरंग तत्व, (3) विरोधी तत्व।

1. महान धारणाओं की क्षमता या विषय की गरिमा

लोंजाइनस उदात्त के तत्वों में विचार की महत्ता को सबसे प्रमुख स्थान देते है। विचार की महत्ता तब तक संभव नहीं है, जब तक वक्ता या लेखक की आत्मा भी महान न हो। वे कहते हैं– ''औदात्य महान आत्मा की प्रतिध्वनि'' है। महान आत्मा का अर्थ– व्यक्ति के चरित्र, आचार, व्यवहार सभी महान हों। इसके लिए प्राचीन, श्रेष्ठ रचनाओं का ज्ञान आवश्यक है। उत्तम आदर्शों के अनुकरण से अनुकर्ता का पथ प्रशस्त तथा आलोकित होता है। अनुकरण बाहरी नकलमात्र नहीं है, बल्कि पूर्वजों की दिव्य भव्यता को अपने में समाहित करने का प्रयास है। वह उदात्त विचारों के लिए कल्पना और प्राचीन काव्यानुशीलन को आवश्यक मानते हैं। वह श्रेष्ठ रचना के लिए उसके विषय का विस्तारपूर्ण होना आवश्यक समझते हैं। उनका मत है कि विषय में ज्वालामुखी के समान असाधारण शक्ति और वेग होना चाहिए तथा ईश्वर के जैसा ऐश्वर्य और वैभव भी।

2. भावावेश की तीव्रता

''पेरिहुप्सुस'' के विभिन्न प्रसंगों में लोंजाइनस के कथनों से ज्ञात होता है कि उदात्त के लिए वे भाव की तीव्रता या प्रबलता को आवश्यक मानते हैं। भाव की तीव्रता के कारण ही वे होमर के ''इलियट'' को ''ओदिसी'' से श्रेष्ठ बताते हैं। भाव की भव्यता में भाव की सत्यता के अंतर्भूत होने से लोंजाइनस भाव के अतिरेक से बचने की राय देते हैं, जिससे भाव अविश्वसनीय (असत्य) न हो जाये। अविश्वसनीयता आह्लाद में बाधक बनती है। ध्यान में रखने की दूसरी चीज, भाव का प्रयोग उचित स्थल पर होना चाहिए। लोंजाइनस अपना अभिप्राय प्रस्तुत करते हैं– ''मैं विश्वासपूर्वक कहना चाहता हूं कि उचित स्थल पर भव्य भाव के समावेश से बढ़कर उदात्त की सिध्दि का और कोई साधन नहीं है। वह (भाव) वक्ता के शब्दों में एक प्रकार का रमणीय उन्माद भर देता है और उसे दिव्य अंतरूप्रेरणा से समुच्छवासित कर देता है।''

3. समुचित अलंकार योजना

लोंजाइनस ने अलंकार का सम्बन्ध मनोविज्ञान से जोड़ा और मनोवैज्ञानिक प्रभावों को व्यक्त करने के निमित्त ही अलंकारों को उपयोगी ठहराया। केवल चमत्कार–प्रदर्शन के लिए अलंकारों का प्रयोग उन्हें मान्य न था। वह अलंकार को तभी उपयोगी मानते थे, जब वह जहाँ प्रयुक्त हुआ है, वहाँ अर्थ को उत्कर्ष प्रदान करे, लेखक के भावावेग से उत्पन्न हुआ हो, पाठक को आनन्द प्रदान करे, उसे केवल चमत्कृत न करे। भाव यदि अलंकार के अनुरूप नहीं है, तो कविता–कामिनी का श्रृंगार न कर उसका बोझ बन जाएगा। वे कहते हैं– ''प्रत्येक वाक्य में अलंकार की झंकार व्यर्थ का आडम्बर होगा।'' इसलिए अलंकारों का प्रयोग वहीं होना चाहिए, जहाँ आवश्यक हो और उचित हो। आगे वे कहते हैं कि भव्यता के आलोक में अलंकारों को उसी तरह छिप जाना चाहिए, जैसे सूर्य के आगे आसपास के मध्दिम प्रकाश धूमिल हो जाते हैं।

4. उत्कृष्ट भाषा

उत्कृष्ट भाषा के अन्तर्गत लोंजाइनस ने शब्द–चयन और भाषा–सज्जा को लिया है। उन्होंने विचार और पद–विन्यास को एक–दूसरे के आश्रित माना है, अतः उदात्त विचार क्षुद्र या साधारण शब्दावली द्वारा अभिव्यक्त न

होकर गरिमामयी भाषा में ही अभिव्यक्त हो सकते हैं। शब्द योजना में भाव प्रवणता शक्ति, ओज, गुण, सौंदर्य, गरिमा आदि श्रेष्ठ तत्व समाहित होने चाहिए। लोंजाइनस कहते हैं– ''सुंदर शब्द ही सुंदर विचार को अभिव्यक्त कर पाता है।'' तुच्छ वस्तुओं की अभिव्यक्ति के लिए विशिष्ट शब्दावली वैसे ही अनुप्रयुक्त होती है, जैसे किसी छोटे बच्चे के मुंह पर रखा विशाल मुखौटा। लोजाइनस का मानना है कि सुंदर शब्द ही वास्तव में विचार को विशेष प्रकार का आलोक प्रदान करते हैं। यह तभी सम्भव है, जब उचित स्थान, उचित प्रसंग में उचित शब्दों का प्रयोग हो।

5. गरिमामय रचना विधान

उदात्त का पंचम स्त्रोत है– रचना की गरिमा। इसका लक्षण है– उचित क्रम में शब्दों का विन्यास। वे कहते हैं, जिस तरह अंग अलग–अलग रहकर शोभाजनक नहीं होते, अपने–अपने स्थान पर आनुपातिक रूप से जुड़कर ही वे सौंदर्य की सृष्टि करते हैंय यही स्थिति उदात्त के रूप से जुड़कर ही वे सौंदर्य की सृष्टि करते हैं। यही स्थिति उदात्त के निष्पादक तत्वों की भी है। कैसे विचार के साथ कैसे भाव का मिश्रण उचित होगा, उसमें कौन–से अलंकार उपयुक्त होंगे, किस तरह के पद, किस क्रम से विन्यास होकर अभिष्ट प्रभाव उत्पन्न करेंगे, इन बातों का ठीक–ठीक आकलन किये बिना रचना में गरिमा नहीं आ सकती। उनकी दृष्टि में रचना का प्राण तत्व है– सामंजस्य, जो उदात्त शैली के लिए अनिवार्य है।

औदात्य के विरोधी तत्व

लोंजाइनस ने उदात्त शैली के विरोधी तत्वों की चर्चा भी उदात्त के तत्वों के साथ ही की है। वे कहते हैं कि रूचिहीन, वाक् स्फीति, भावाडम्बर, शब्दाडम्बर, आदि उदात्त–विरोधी हैं। लेखक अशक्तता और बचने के प्रयास में शब्दाडंबर के शिकार हो जाते हैं। शब्दाडंबर उदात्त के अतिक्रमण की इच्छा से उत्पन्न होता है, किन्तु उदात्त का अतिक्रमण करने के बदले वह उसके प्रभाव को ही नष्ट कर देता है। बालिशता (बचकानापन) भव्यता का विलोम है। यह दोष तब आता है, जब लेखक रचना को असाधारण या आकर्षक या भड़कदार बनाना चाहता है, पर हाथ लगती है– केवल कृत्रिमता और प्रदर्शनप्रियता। भावांडबर या मिथ्याभाव तीसरा दोष है। जहाँ भाव के बदले संयम की आवश्यकता है, वहां जब लेखक भाव की अमर्यादित

अभिव्यक्ति में प्रवृत होता है, तो भावाडंबर आ जाता है। अतः यह मानना पड़ेगा कि उदात्त का विश्लेषण और समग्र विवेचन भारतीय काव्यशास्त्र में उतना नहीं, जितना लोंजाइनस के 'पेरिइप्सुस' में। उसकी सबसे बड़ी देन यह है कि उसने दोषपूर्ण महान कृति को निर्दोष साधारण कृति से ऊँचा माना है, क्योंकि महान कृति में ही दोषों की सम्भावना हो सकती हैं।

संदर्भ

1. पाश्चात्य काव्यशास्त्र : देवेन्द्रनाथ शर्मा, मयूर पेपर बैक्स, पंद्रहवां संस्करणः 2016, पृष्ठ 86–122
2. भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र : डॉ. सत्यदेव चौधरी, डॉ. शन्तिस्वरूप गुप्त, अशोक प्रकाशन, नवीन संस्करणः 2018, पृष्ठ 215–218
3. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र की पहचान : प्रो. हरिमोहन, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करणः 2013, पृष्ठ 118–122

■■

(4)

वड्र्सवर्थ–काव्य भाषा का सिद्धांत

पुष्पांजली दासे

अंग्रेजी भाषा के स्वच्छंदतावादी प्रसिद्ध कवि विलियम वड्र्सवर्थ मूलतः कवि के रूप में स्थापित हैं। उनके भाषा संबंधित सिद्धांत 'लिरिकल बैलेड्स' ग्रंथ में है। उनमें एक सहज सौन्दर्य बोध व अत्यधिक भाव–प्रवणता थी। उनके जीवन में परिस्थितियाँ कुछ इस तरह घटित हुई कि काव्यालोचन के क्षेत्र में सहज ही उनके कदम बढ. गये। सेक्सपियर और मिल्टन के बाद वे अंग्रेजी के तीसरे सबसे बड़े कवि हैं। उनकी कुछ कविताएँ विशेष रूप से 'प्रगीत' विश्व साहित्य की अमूल्य निधि है। 'बैलेड' (गाथागीत) शेक्सपियर और उससे पहले के युग का लोक प्रिय काव्य रूप था, जो लोक परंपरा में विकसित हुआ था। 'बैलेड' साहित्य की सहज–सरल भाषा, नव्यशास्त्रीय काव्य भाषा से पर्याप्त भिन्न थी। इस प्रकार 'लिरिकल बैलेड्स' शीर्षक में ही यह व्यंजना है कि इस संग्रह के माध्यम से वड्सवर्थ और कॉलरिज एक ओर लिरिक कविता का विकास कर रहे थे और दूसरी ओर उसका संबंध प्राचीन लोक साहित्य से जोड़ रहे थे।

व्यक्तित्व व युगीन परिवेश

कोई भी लेखक, कवि, विचारक समालोचक अपनी निजी परिस्थितियों व युगीन वातावरण की क्रिया–प्रतिक्रिया में ही अपना विकास करता है। विलियम वड्र्सवर्थ ने अपना काव्य जीवन सहज प्राकृतिक वातावरण का

---

* जन्म तिथि : 26 जुलाई 1981, माता : श्रीमती इंद्राणी नायक, पिता : श्री गिरधारी लाल नायक, पति : श्री रवीन्द्र दासे, शैक्षणिक योग्यता : एम. ए. हिन्दी, बी. एड., सम्प्रति : व्याख्याता एल बी, शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय बड़े भण्डार, जिला– रायगढ़, मो. 9926768242,

मेल– : dasepushpanjali05@gmail.com

सानिध्य प्राप्त करके ही शुरू किया था। बीस वर्ष की उम्र में यानी 1790 ई. में उन्होंने फ्रांस, इटली व आल्पस पर्वत की पैदल यात्रा की थी। आल्पस की प्राकृतिक सुषमा ने उसकी सौंदर्य भावना को बहुत प्रभावित किया । सामंतवाद के दमन और उत्पीड़न के प्रति विद्रोही होकर वे ग्राम जीवन और प्राकृतिक सौंदर्य की ओर उन्मुख हुए थे।

काव्य भाषा का सिद्धांत–

वड्र्सवर्थ ने परंपरागत भाषा शैली कृत्रिम और आडंबर पूर्ण काव्यभाषा का विरोध किया। ज्यों–ज्यों उनकी व्यक्तिवादिता व भावुकता बढ़ती गयी, त्यों–त्यों उन्हें परंपरागत शैली से वितृष्णा हो गयी। आधुनिक युग में जिस तरह टी. एस. इलियट व एजरा पाउण्ड ने बोलचाल की भाषा के प्रयोग का समर्थन किया, वैसे ही वड्र्सवर्थ ने अपनी प्रकृति व स्वभाविक भाषा शैली का समर्थन किया। वड्र्सवर्थ काव्यगत युक्तियों जैसे मानवीकरण, वक्रोक्ति तथा पौराणिक दन्तकथाओं, भावाभास इत्यादि को काव्य के लिए उपयुक्त नहीं मानते। वड्र्सवर्थ ने कृत्रिमता के स्थान पर सरलता को शैलीगत सौंदर्य माना है। उसके समय में अलंकृत भाषा का यांत्रिक अनुकरण हो रहा था। 18वीं सदी में नव–अभिजात्यवादी युग में भाषा के निम्न व उच्च दो रूप प्रचलित थे। दैनिक जीवन की भाषा को निम्न कहा जाता था, दूसरी अन्य भाषा कृत्रिम, बोझिल व आडम्बरपूर्ण हो गयी थी। वड्र्सवर्थ ने इस कृत्रिम भाषा का परित्याग करके सरल भाषा पर जोर दिया। वड्र्सवर्थ का मानना था कि कविता में ऐसी भाषा का व्यवहार करना चाहिए, जो आम जनता की भाषा से ग्रहण की गई हो। अभिजात वर्ग की भाषा आज आम जनता की भाषा नहीं है, अतः उसे कविता की भाषा बनाए रखना उचित नहीं है। उनकी मान्यता थी कि गहराई से चीजों को देखने, उनका अनुभव करने, उनके प्रति अपनी संवेदनाएँ प्रकट करने की क्षमता, जितनी आम जनता में होती है, उतनी लिरिकल बेलेड्स (1978) में नहीं होती। वड्र्सवर्थ बोलचाल की भाषा के आधार पर महान काव्य की रचना करना चाहते थे। वड्र्सवर्थ की भाषा संबंधी मान्यताओं के तीन आधार हैं –

1. काव्य में ग्रामीण भाषा का प्रयोग

वड्र्सवर्थ ने जिस प्रकार काव्य के विषय के लिए ग्रामीण जीवन का समर्थन किया, उसी प्रकार ग्रामीण जीवन के दैनिक व्यवहार की भाषा का

भी समर्थन किया। उनका मानना है कि ग्रामीण अपनी निम्न स्थिति के कारण सामाजिक वर्ण से मुक्त होकर सरल स्वाभाविक अभिव्यक्ति करते हैं। उनकी वाणी में सच्चाई तथा भावों में सरलता होती है। साधारण और ग्रामीण जीवन को इन कविताओं का विषय क्यों बनाया गया, इसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है कि "साधारण और देहात का जीवन आम तौर पर इसलिए चुना गया कि उस स्थिति में मानव हृदय के मूल भावों को परिपक्व होने के लिए अधिक अच्छी जमीन मिलती है, वहाँ उनके ऊपर उतना प्रतिबंध नहीं होता और वे अधिक जोरदार और अधिक साफ भाषा बोल सकते हैं"। जीवन की उस दशा में हमारे मूल भाव एकदम साधारण या प्राकृतिक स्थिति में रहते हैं। अतः उनका ठीक–ठीक चिंतन–मनन संभव है और उन्हें ज्यादा कारगर ढंग से सम्प्रेषित किया जा सकता है। ग्रामीण जीवन के आचार–व्यवहार ऐसे मूल भावों से और ग्रामीण पेशों की ऐसी आधारभूत विशेषताओं से उत्पन्न होते हैं, जो सहज संबंध बन सकते हैं और स्थायी रूप ग्रहणकर सकते हैं और अंत में उस दशा में मानवीय भावों का प्रकृति के रमणीय और स्थायी रूपों के साथ सामंजस्य हो सकता है। वड्र्सवर्थ की मान्यता थी कि ग्रामीणजन अपनी अनुभूति के आधार पर बोलते हैं, अतः उनकी ऐसी भाषा बार–बार के अनुभव और नियमित भावदशाओं से उत्पन्न होती है। यह अधिक स्थायी और कहीं अधिक दार्शनिक गंभीरता लिए हुए होती है, इसलिए उनकी वाणी में जो सच्चाई, ईमानदारी और स्वभाविकता होती है, वह उन कवियों की कृत्रिम भाषा में नहीं हो सकती, जो यह सोचते हैं कि जिस अनुपात में वे मानवीय सहानुभूति से अपने–आपको दूर रखेंगे और अभिव्यक्ति की मनमानी पद्धति का अनुसरण करेंगे, उतना ही अपने–आपको और अपनी कला को महिमान्वित करेंगे।

2. गद्य–पद्य में समान भाषा का प्रयोग

वड्र्सवर्थ की यह मान्यता रही है कि गद्य–पद्य में या गद्य व छन्दोबद्ध रचना में कोई तात्विक भेद नहीं हो सकता। वड्र्सवर्थ की भाषा संबंधी इस अतिवादी मान्यता का, परंपरा तथा वास्तविकता के साथ स्पष्ट विरोध है। गद्य–पद्य का अंतर केवल छन्द के कारण ही नहीं होता, अपितु वाक्य विन्यास, पद चयन इत्यादि के कारण भी होता है। नव्यशास्त्रीय दौर में इन

दोनों के अंतर को मान्यता दी गई थी और इसी अंतर के आधार पर कृत्रिम आडम्बर पूर्ण काव्यभाषा को उचित ठहराया गया था। लेकिन हर अच्छी कविता की भाषा, चाहे उसका स्वर कितना भी उदात्त क्यों न हो, अच्छे गद्य की भाषा से भिन्न नहीं होती। यही नहीं, सबसे अच्छी कविताओं के सबसे मार्मिक अंश गद्य की भाषा के एकदम समरूप होंगे। उन्होंने ग्रे कवि की एक सॉनेट (ऑन दी डेथ ऑफ रिचर्ड वेस्ट) को उदाहरण स्वरूप उद्धृत करके यह दिखाया कि उसमें जहाँ–जहाँ मार्मिकता या कवित्व है, उन अंशों की भाषा अच्छे गद्य की भाषा से भिन्न नहीं है। जबकि ग्रे का ऐसे कवियों में प्रमुख स्थान है, जिन्होंने गद्य और छंदोबद्ध रचना में अंतर की दूरी को और अधिक बढ़ाने की कोशिश की है। अतः उसने घोषणा की कि ''गद्य और छंदोबद्ध रचना की भाषा में मूलतः न तो कोई अंतर है और न हो सकता है।'' सामान्य बुद्धि के स्तर पर उतरकर उन्होंने कहा कि ''उनके बोलने और सुनने के अंग एक ही हैं, उन दोनों के परिधान एक ही तत्व के बने होते हैं। दोनों की शिराओं में एक ही मानवीय रक्त प्रवाहित होता है।''

3. प्राचीन कवियों की भाषा कृत्रिमता तथा आडम्बर मुक्त

सभी देशों के प्राचीन कवियों ने वास्तविक घटनाओं से उत्पन्न भावों का आधार लेकर काव्य रचना की। चूंकि उनकी अनुभूति व माप प्रबल थे, इसलिए सहज ही उनकी भाषा प्रभावी व अलंकृत हो गयी, किंतु बाद में कवि यश की कामना से काव्य–रचना करने लगे, जिससे भाषा में कृत्रिमता आ गयी। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के हाथ में लाकर भाषा जटिल, कृत्रिम व आडम्बर युक्त हो गई। वह सहज व सरल न रही और उसकी भावोद्दीपन क्षमता एकदम समाप्त हो गई। वड्र्सवर्थ इस नव–अभिजात्यवादी काव्य भाषा का त्याग कर प्राचीन कवियों की भाषायी परंपरा को फिर से अपनाने का आग्रह करते हैं। वड्र्सवर्थ का विचार था कि यदि कवि ने अपने विषय का चुनाव समझदारी से किया है, तो उपयुक्त अवसर आने पर प्रबल उन्मेषयुक्त भावों की भाषा अनायास भव्य, सजीव व चित्रात्मक हो जायेगी।

छंद विधान–

वड्र्सवर्थ कविता को छंदमयी मानते हुए भी कविता के लिए अनिवार्य नहीं मानते, तथापि छंद की महत्ता, शक्ति व प्रभाव को स्वीकार करते हैं। उनकी दृष्टि में छंद से विषय सम संतुलित व आनंदप्रद बन जाता है।

वड्र्सवर्थ छंद को कविता के लिए अनिवार्य न मानकर, कविता का एक गुण स्वीकार करते थे, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। उनका मत है कि छंद के कारण कवि को एक विशेष भाषा का प्रयोग करना पड़ता है। वे भाषा की तरह छंद के चुनाव पर भी बल देते हैं। परंतु उनकी मान्यता है कि छंद मनमाना न होकर, उपयुक्त नियमबद्ध व निश्चित होना चाहिए। वड्र्सवर्थ के अनुसार, "छंद मन को जैसे चेतना के एक नए धरातल पर उठा ले जाता है।" और एक प्रकार की सौंदर्यपरक दूरी में वृद्धि करता है। ''यह भावावेग को संयमित और नियंत्रित करता है।''

वड्र्सवर्थ की भाषा छंद विषयक मान्यताओं से उनके युग के साहित्यकार व आलोचक सहमत नहीं हो सके। वड्र्सवर्थ की भाषा–विषयक मान्यताओं की आलोचना उनके मित्र कॉलरिज ने ही की। कॉलरिज ने 'बायोग्राफिया लिटरेरिया' में वड्र्सवर्थ की मान्यताओं की तीखी आलोचना इस प्रकार की–

1. वड्र्सवर्थ ने ग्रामीण जीवन से संबंधित विषयों के लिए ग्रामीण भाषा के प्रयोग को वांछनीय माना था। कॉलरिज ने वड्र्सवर्थ के ग्रामीण भाषा विषयक विचारों को अनुपयुक्त बताया। उसने कहा कि काव्य–भाषा, भावों व अनुभूतियों का सम्प्रेषण करने में सक्षम होनी चाहिए। किंतु ग्रामीण भाषा की शब्दावली अपर्याप्त व कामचलाउ होती है। ग्रामीण भाषा का सूक्ष्म व विविध अनुभूतियों का संप्रेषण संभव नहीं है। ग्रामीण भाषा का वस्तु ज्ञान भी सीमित होता है। उसके आधार पर ग्रामीण भाषा में सूक्ष्म गठन और वैविध्यपूर्ण अनुभूतियों को अभिव्यक्त कर पाना संभव नहीं है।

2. वड्र्सवर्थ ने "मनुष्यों की वास्तविक भाषा" की बात की है। कॉलरिज इस विचार से भी असहमत हैं। उनका कहना है कि प्रत्येक मनुष्य की भाषा उसकी ज्ञान क्रिया संवेदना के अनुसार भिन्न–भन्न होती है। शिक्षित व अशिक्षित दोनों को अपनी–अपनी भाषा की आवश्यकता होती है। कॉलरिज के अनुसार, हर मनुष्य की भाषा का स्वरूप जिन कारणों से निर्धारित होता है, वह है– (क) मनुष्य की वैयक्तिक विशेषताएँ, (ख) उसकी वर्गीय विशेषताएँ और (ग) सामान्य शब्दों और मुहावरों की अंतर्निहित विशेषताएँ। इन्हीं तीन कारकों के आधार पर लोगों की भाषा परस्पर भिन्न होती हैं। कॉलरिज कहते हैं कि यथार्थ (Real) के स्थान पर वड्र्सवर्थ को 'साधारण' (Ordinary) या 'सामान्य' शब्द का प्रयोग करना चाहिए। अतः काव्य–भाषा

में स्वाभाविक भाषा का प्रयोग अनुचित है। परंतु वड्र्सवर्थ के उपयुक्त विचार एक सीमित उद्देश्य व परिप्रेक्ष्य के लिए ही थे।

3. 'लिरिकल बैलेड्स' के आमुख में वड्र्सवर्थ ने यह विचार व्यक्त किया था कि कविताओं में ग्रामीण जनों की भाषा को भी अपनाया गया है (निश्चय ही उन दोषों को दूर करके, जो अरूचि तथा जुगुप्सा उत्पन्न करते हैं और ये वस्तुतः वास्तविक दोष प्रतीत होते हैं)। वड्र्सवर्थ के इस कथन पर कॉलरिज ने आपत्ति जताते हुए लिखा कि ग्रामीण भाषा को यदि क्षेत्रियता, ग्राम्यता आदि दोषों से मुक्त करके संस्कारित कर दिया गया, तो यह ग्रामीण भाषा कैसे हो सकती है ? किसी ग्रामीण की भाषा को क्षेत्रियता, ग्राम्यता आदि सभी तरह के दोषों से मुक्त करके यदि उसका परिष्कार कर दिया गया और उसका परिमार्जन करके उसे व्याकरणिक नियमों के अनुरूप ढाल लिया गया, तो वह किसी सामान्य व्यक्ति की भाषा से भिन्न होगी। कॉलरिज यह भी नहीं मानते कि ग्रामीण व्यक्ति जिन वस्तुओं से परिचित होता है और उनसे जो शब्द और मुहावरे ग्रहण किए जाते हैं, वे भाषा के सर्वोत्तम अंश का निर्माण करते हैं। कॉलरिज के शब्दों में, जो सही मायनों में मानव–भाषा का सर्वोत्तम अंश कहलाता है, वह स्वयं मानसिक क्रियाकलाप के अनुचिंतन से उद्भूत होता है।

4. कॉलरिज ने वड्र्सवर्थ की 'तीव्र अनुभूति की दशा' की भी आलोचना की है। उसका कथन है, "भाव की उष्मा विचारों या बिम्बों में, चाहे जो भी अभिनव संबंध स्थापित करें या सत्य अथवा अनुभूति का जो भी साधरणीकरण करे, उसके संप्रेषक शब्द तो बोलचाल में पहले से ही विद्यमान रहते हैं, असाधारण उत्तेजना से भी समुदित हो जाते हैं।" परंतु वड्र्सवर्थ ने यह नहीं कहा था कि भावों की उत्तेजना और अनुभूति की तीव्रता शब्दाडम्बर को प्रभावित करती है। उनका इतना ही कहना है कि अनुभूति की तीव्रता की दशा में प्रयुक्त शब्द शक्तिशाली व प्रभावशाली होते हैं, उनमें अनायास काव्यगुण आ जाते हैं। काव्य में शब्द अलौकिक नहीं होते, वे बोलचाल की भाषा से ही ग्राह्य होते हैं।

5. 'गद्य और पद्य की भाषा में अभिन्नता' पर कॉलरिज ने गंभीरता से विचार किया। वड्र्सवर्थ द्वारा प्रयुक्त 'एसेंसल' शब्द का विश्लेषण करते हुए कॉलरिज ने कहा कि मैंने प्रत्येक देश व प्रत्येक युग के सर्वोत्कृष्ट कवियों

के द्वारा प्रयोग की गई भाषा को ध्यान देने पर पाया कि उनकी रचना की भाषा में सचमुच अनिवार्य भेद हो सकता है और होना चाहिए।

यदि हम वड्र्सवर्थ के गद्य–पद्य की भाषा में अभेद की बात पर गंभीरता से विचार करें, तो उसमें पर्याप्त सत्य–दर्शन का भान होगा। उदाहरण के रूप में, बाणभट् के गद्य व कालिदास के पद्य को देखें, तो दोनों की भाषा में लगभग समानता दिखाई देती है। गद्य कवियों की कसौटी है, वड्र्सवर्थ ने उत्तम गद्य की भाषा के लिए यह बात स्वीकार की है।

वड्र्सवर्थ ने पुरानी सद्मान्यताओं को ग्रहण करते हुए, उन्हें नया रूप प्रदान किया। नव–शास्त्रवादियों के समान उन्होंने काव्य को प्रकृति का अनुकरण नये अर्थ में स्वीकार किया। वड्र्सवर्थ ने 'कल्पना शक्ति' पर विशेष बल दिया है, जिसके द्वारा कवि ब्रम्हाण्ड की एकता का अनुभव करता है। उन्होंने शैली की शुद्धता तथा अलंकृत भाषा के स्थान पर अंतः स्फूर्तभावों से सहज उच्छलन को बल देकर रोमानी आलोचना का प्रवर्तन किया। वड्र्सवर्थ ने काव्य–निर्माण की प्रक्रिया के आधार पर काव्य का विवेचन किया व काव्य में भाव–तत्व की प्रतिष्ठा की। उन्होंने सर्वप्रथम ग्रामीण–जीवन के भावों के विविध पक्षों का निरूपण और विवेचन सूक्ष्मता से की है। उसमें महाकवि की अर्न्तदृष्टि है, जिसका महत्व आज भी अक्षुण्ण है। काव्य–भाषा के बारे में कॉलरिज के विचारों में यद्यपि पर्याप्त गहराई है किंतु वड्र्सवर्थ की काव्य–भाषा संबंधी अवधारणा को लेकर उनकी टिप्पणियाँ उतनी संतोषजनक नहीं हैं। इसका मूल कारण यह है कि इन टिप्पणियों के दौरान उन्होंने संदर्भ को ध्यान में नहीं रखा है। कॉलरिज ने सामान्य रूप से काव्य भाषा पर विचार किया, जबकि वड्र्सवर्थ ने 'लिरिकल बैलेड्स' में संग्रहित कविताओं के विशेष संदर्भ में अपने विचार व्यक्त किये हैं। वड्र्सवर्थ कहते हैं, ''प्रबल मनोभावों का सहज उच्छलन ही कविता है।'' जबकि कॉलरिज कहते हैं, ''सर्वोत्तम शब्दों का सर्वोत्तम क्रम कविता है।''

संदर्भ ग्रंथ :–

1. डॉ. कुमार गणेश
2. कैलाश सुथार, पाश्चात्य के काव्य शास्त्र, वड्र्सवर्थ का काव्य सिद्धांत।
3. हिन्दी श्री 16 अगस्त 2020।

■■

(5)

कॉलरिज : कल्पना सिद्धांत एवं ललित कल्पना

सरोजनी डडसेना

पाश्चात्य रोमांटिक आलोचना जगत में सैमुअल टेलर कॉलरिज एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर है। इनका जन्म सन् 1772 में डेयनशायर (इंग्लैड) में हुआ था। इनके पिता एक पादरी थे, अतः इन्हें भी तीनों भाईयों की तरह पादरी बनाने के उद्देश्य से इनकी शिक्षा आरंभ हुई। लेकिन अपने अस्थिर स्वभाव के कारण पढ़ाई बीच में ही छोडकर सेंना में भर्ती हो गये। अपनी चंचल मनोवृत्ति के कारण इधर–उधर भटकते रहे। कभी राजनीति पर भाषण दिए, तो कभी धर्म पर भाषण दिए। कभी पत्रिका निकाली, कभी फिर से पादरी बनने की तैयारी की। तीस वर्ष की अवस्था में अफीम की लत लग गई, जो इनके जीवन और लेखन को अनेक रूप से प्रभावित किया।

कॉलरिज सोलह वर्ष की आयु में ही लिखना शुरू कर दिए थे। इनका पहला गद्य संग्रह 'पोयम्स' 1796 में आया। बायोग्राफिया लिटरेरिया (1817), द फ्रेंड (1817), एड्स टू रिफलेक्शन (1825), चर्च एंड स्टेट(1830) इत्यादि इनकी प्रकाशित पुस्तकें हैं। कॉलरिज की असाधारण प्रसिद्धि का आधार इनकी 'बायोग्राफिया लिटरेरिया' (साहित्य जीवन चरित्र) और 'लैक्चरर्स ऑन सेक्सपियर' शीर्षक की आलोचना कृतियाँ हैं। कंफेशंज ऑफ एन इनक्वायरिंग स्पिरिट (1840 – मरणोपरान्त) इनकी मुख्य कृति है। कॉलरिज की मृत्यु सन् 1834 में हो गयी।

---

* जन्म तिथि : 21 जनवरी 1989, पति : श्री लक्ष्मी नारायण डडसेना, योग्यता : एम. ए. (हिन्दी, अंग्रेजी), बी. एड्., नेट, सेट, सम्प्रति : शिक्षक, शासकीय पूर्व माध्यमिक विद्यालय बिर्रा, मो. : 9131305905

मेल– : sarojanidadsena22@gmail.com

कॉलरिज बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। इन्होंने सैद्धांतिक समीक्षा, काव्यालोचन दर्शन एवं समालोचना के क्षेत्र में अपनी पहचान बनाई। निर्मला जैन के अनुसार, ''उनका मन इतना अस्थिर और जीवन इतना विश्रृंखलित रहा कि किसी भी क्षेत्र में उनकी प्रतिभा अपनी योग्यता के अनुरूप पूर्णता को हासिल नहीं कर सकी। विलियम वड्र्सवर्थ के परममित्र थे तथा उनका कविता संग्रह 'लिरिकल बैलेड्स' (1798) के सहयोगी कवि भी थे। इन्होंने व्यवहारिक तथा सैद्धांतिक दोनों ही प्रकार की आलोचना की और अपनी प्रखर समीक्षक दृष्टि का परिचय दिया। कॉलरिज की आलोचना दृष्टि में मौलिकता के अभाव का भी आरोप लगाया गया, इसके पीछे कांट, शेलिंग, गेटे आदि विचारक से प्रभावित होना बताया जाता है। कॉलरिज प्रत्ययवादी चिंतकों की श्रेणी में आते हैं और उनकी काव्य रचना पर ही नहीं, सिद्धांत विवेचन पर भी दार्शनिकता की छाप है।

कॉलरिज का कहना है कि व्यंजना की महिमा के कारण ही कोई उत्तम काव्य बार–बार पढ़ने पर भी नीरस नहीं लगता, क्योंकि उससे हर बार नयी छटा, नये सौंदर्य की प्रतीति होती रहती है। कॉलरिज कविता की परिभाषा इस प्रकार देते हैं, ''कविता सर्वोत्तम शब्दों का सर्वोत्तम क्रम विधान है।'' (poetry is the best words in the best order.)

कॉलरिज से पूर्व कल्पना की पृष्ठभूमि

समालोचना के क्षेत्र में कॉलरिज का ख्यातिलब्ध होना निर्मला जैन के इस कथन से स्पष्ट है, ''काव्य व दर्शन से कल्पना को बहुत पहले ही जोड़ा जाता रहा है, किंतु कॉलरिज ने इसका विस्तार से विवेचन–विश्लेषण किया और इसे मुख्य तथा गौण कल्पना में वर्गीकृत किया।

'कल्पना', कल्पना शक्ति का विवेचन है। कॉलरिज के पूर्व कल्पना का संबंध काव्य तथा दर्शन के क्षेत्र में था। कल्पना की पहचान कविता में एक प्रेरक शक्ति के रूप में प्लेटो के समय से ही होने लगी थी। प्लेटो ने कल्पना के लिए फैन्टेसिया शब्द का प्रयोग किया। तदुपरान्त अरस्तु ने भी इसका उल्लेख किया है। अरस्तु के एक परिच्छेद में यह वर्णन आता है कि ''काव्य प्रकृति का अनुकरण होता है और प्रकृति के पुनः सृजन के लिए वह अनुभूति और कल्पना का सहारा लेता है।'' एडिसन (1672–1719) ने उसे मूर्ति विधान करने वाली शक्ति बताया है। कल्पना के संबंध में महत्वपूर्ण विचार

कॉलरिज के हैं। इस प्रकार कल्पना का तदंतर विवेचन होता रहा है, साथ–ही–साथ 'इमेजिनेशन' और 'फैंटेसी' की प्रकृति पर भी अनवरत विचार होने लगा। 'फैंसी' शब्द ग्रीक शब्द के 'फांतासिया' और 'इमेजिनेशन' शब्द लैटिन के 'इमाजिनातियो' से बना है। 'फैंसी' शब्द हिन्दी में रम्य कल्पना (ललित कल्पना) तथा इमेजिनेशन के लिए कल्पना शब्द आया है।

इमेजिनेशन (कल्पना) और फैंसी (ललित कल्पना) में अंतर

कॉलरिज ने कल्पना और ललित कल्पना के अंतर में भी प्रकाश डाला है। यद्यपि दोनों तात्विक रूप से एक हैं तथापि अंतर भी है। कल्पना काव्यगत सार्थक और उपयुक्त बिम्बों की रचना करती है, जबकि ललित कल्पना निम्नकोटि और मनगढ़ंत बिम्ब की रचना करती है। कल्पना आत्मा की एक शक्ति है। जिसका संबंध मस्तिष्क से है। जबकि ललित कल्पना दिव्य है, सर्जनात्मक है, रचनाशीलता का गुण है, ललित कल्पना स्वच्छंद अनुशासित होती है। कल्पना निर्मित बिम्ब सार्थक और संबद्ध होती है। उनमें क्रम और औचित्य रहता है, वह जड़ व चेतन तथा भाव व विचार के बीच सामंजस्य स्थापित करती है। विचार और भाव को साकार करना कल्पना का कार्य है। फैन्टेसी का संबध रचनाकार के अवचेतन मन से होता है। अतः इसमें मन के निगुढ़ तत्वों की झलक मिल जाती है।

कल्पना की अवधारणा

कॉलरिज से पहले कल्पना व ललित कल्पना में अंतर नहीं किया जाता था। किन्तु कॉलरिज ने इन दोनों में अंतर स्थापित कर दिया। ललित कल्पना का संबंध अचल और निर्दिष्ट पदार्थों से है। वह कल्पना को ललित कल्पना से श्रेष्ठ मानता है। कॉलरिज मानते हैं कि 'जिस प्रकार प्रतिभा को प्रज्ञा की आवश्यकता है, उसी प्रकार कल्पना को भी ललित कल्पना की आवश्यकता है।' यह एक दूसरे से भिन्न शक्तियाँ हैं। कल्पना का काम एकीकरण और पुनर्निर्माण है, ललित कल्पना केवल संयोजन मात्र है। ललित कल्पना में जीवन का यथार्थ रूपायित नहीं हो पाता, किन्तु तकनीक के रूप में इसका प्रयोग करके जीवन यथार्थ के बिम्ब प्रस्तुत किये जा सकते हैं। कॉलरिज दिखलाते हैं कि ललित कल्पना को भ्रमवश गौण कल्पना का समानान्तर मान लिया जाता है, क्योंकि दोनों ही कल्पना द्वारा प्रस्तुत तथ्यों को लेकर आगे चलती हैं। किन्तु वास्तव में दोनों में स्पष्ट अंतर है। गौण

कल्पना उन तथ्यों की गहराई में जाकर सृजन करती है, जबकि ललित कल्पना तथ्यों का मात्र संयोजन करती है।

कॉलरिज की स्थापनाओं में कल्पना का विशेष महत्व है। कॉलरिज से पूर्व कल्पना के विषय में अनेक तरह की असंगत धारणाएं प्रचलित थीं। इनमें एक प्रमुख धारणा यह है कि कल्पना प्रकृति का वरदान या दिव्य रहस्यमय शक्ति है, इसलिए इसकी व्याख्या तर्क के आधार पर नहीं की जा सकती। कॉलरिज की दृष्टि में ''कल्पना ईश्वरीय शक्ति है, जिसका प्रधान गुण सृजन है।'' काव्य एवं दर्शन के क्षेत्र में कल्पना को बहुत पहले से जोड़ा जाता रहा है। 17वीं सदी से साहित्यशास्त्र में कल्पना का बकायदा विवेचन एवं विश्लेषण होने लगा। कॉलरिज का मानना है कि कल्पना हृदय और बुद्धि तथा अंतर्जगत और बहिर्जगत का समन्वय करती है, इससे विचार भी सरल हो जाते हैं। विचार तथा भाव का समन्वय (द यूनियन ऑफ हेड एंड हार्ट) श्रेष्ठ कविता के लिए अनिवार्य है। कॉलरिज के अनुसार कल्पना समन्वयकारी शक्ति है, जो पदार्थ और चेतना का, विचार और भाव का उचित समन्वय करती है। कॉलरिज के अनुसार कल्पना के द्वारा ही काव्य हृदयग्राही, मर्मस्पर्शी और सजीव बनता है। कविता की प्रेरक शक्ति के रूप में कल्पना की पहचान काव्यशास्त्र एवं साहित्यशास्त्र के आरंभिक दौर में प्लेटो एवं अरस्तु के समय से ही होने लगी थी। अरस्तु कहते हैं कि कविता में प्रकृति का अनुकरण होता है और प्रकृति के पुनःसृजन के लिए कल्पना एवं अनुभूति का सहारा लिया जाता है। कॉलरिज के कल्पना सिद्धांत में कल्पना की उत्पत्ति एवं इसकी प्रकृति को देखने से हमें दो प्रमुख मतों का सहारा लेना पड़ेगा– पहला अनुभववादी, दूसरा प्लेटोवादी। कल्पना की उत्पत्ति कैसे होती है? क्या यह मनुष्य की जन्मजात विशेषता है? या अनुभव से प्राप्त होता है? इस संदर्भ में निर्मला जैन का यह कथन दृष्टव्य है, ''कल्पना वह शक्ति है, जो मस्तिष्क में संवेदना से प्राप्त अनुभवों को बिंब बनाती है और उन बिंबो का यथावत नही बल्कि अपने तरीके से नया और अनूठा संयोजन कर सकती है।''

कल्पना की दार्शनिक पृष्ठभूमि

कॉलरिज आत्मवादी चिंतक थे तथा जर्मन के दार्शनिक विचारधारा से प्रभावित थे। इन्होंने कल्पना को दिव्य प्रेरणा और ईश्वर की सर्जना–शक्ति

की सहोदरा कहा है। कल्पना के आधार पर ही मनुष्य सर्जन करता है तथा एक बिंबात्मक पृष्ठभूमि का निर्माण करता है। कॉलरिज की कल्पना–शक्ति ही उनकी रचनाधर्मिता का मूल आधार है। यह विभिन्न तत्वों का एकीकरण करने वाली वह मानसिक शक्ति है, जो विरोधों का समंजन व संतुलन करती है। कॉलरिज प्रत्ययवादी चिंतकों की श्रेणी में आते हैं और उनकी काव्य रचना पर ही नही, सिद्धांत–विवेचन पर भी दार्शनिकता तथा आध्यात्मिकता की गहरी छाप है। वस्तुतः कॉलरिज के चरित्र और व्यक्तित्व में कवि, समालोचक और दार्शनिक इस प्रकार घुले मिले थे कि तीनों ही पक्षों का एक–दूसरे पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। इस विषय पर निर्मला जैन का वक्तव्य उद्धृत है– कॉलरिज की आलोचना को एक और तत्व कुछ दुर्बोध बना देता है। यह तत्व है– दार्शनिकता से उत्पंन्न अमूर्तता। अतः कॉलरिज की कल्पना की दार्शनिक पृष्ठभूमि कुछ अलग है, जो दार्शनिकों तथा साहित्यशास्त्रियों को विचार करने का माध्यम प्रस्तुत करता है।

कल्पना की प्रकृति

कॉलरिज कल्पना को न सिर्फ कल्पना की प्रकृति, प्रकार्य तथा वर्गीकरण में स्वीकारते हैं, बल्कि व्यक्ति की आत्मा तथा बाह्य प्रकृति और वस्तु के बीच समन्वय स्थापित करने वाली शक्ति के रूप में देखते हैं। पिछले काव्य सिद्धांतों एवं कविता में यह समन्वय देखने में नही आया था। पिछली कविता का समन्वय केवल बाह्य तत्वों से था, अंतस से इनका कोई सरोकार नहीं था। हालांकि चित्रण दोनों का था, लेकिन समन्वय केवल बाह्य ही था। यह प्रकृति भव्य भावनाओं या उपदेशों के स्रोत के रूप में चित्रित की गई थी। कविता के आंतरिक तत्वों को उजागर करना तो वड्र्सवर्थ एवं कॉलरिज की देन है। इनकी कविताओं में प्रकृति तथा मानव जीवन बाह्य तथा आंतरिक संसार इस प्रकार घुले मिले थे कि उन्हें अलग करके देखना संभव नहीं था। इनका एक अखंड इकाई के रूप में प्रस्तुतीकरण कल्पना शक्ति के माध्यम से ही संभव हुआ। निर्मला जैन के अनुसार, ''वस्तु और आत्मा का यह एकात्म तभी संभव था, जब दोनों को अखंड इकाई के रूप में देखा जाये।'' यह दृष्टि कल्पना को उद्धृत करती है।

कल्पना की प्रकृति की ओर विचार करने पर पाते हैं कि भले ही कॉलरिज एवं वर्ड्सवर्थ के कल्पना संबंधी चिंतन के केन्द्रीय तत्वों में अंतर

जरूर हो, लेकिन इन दोनों ने ही कल्पना को समान्यतः विपरीत या विरूद्ध माने जाने वाले तत्वों का समंजन तथा संलयन करने वाली शक्ति के रूप में देखा है। ''कॉलरिज का मत है कि कल्पना में एक प्रकार की संश्लेषात्मक तथा जादुई शक्ति होती है, जो विरोधी या विसंवादी धर्मों में संतुलन स्थापित करती है। कल्पना यह कैसे करती है, यह कहना कठिन है। अर्थात् कल्पना का परिणाम तो दिखाई देता है, पर प्रक्रिया दिखाई नही देती।'' अतः यह कह सकते हैं कि कल्पना सृजन है तथा इसका कार्य केवल एकीकरण और समंजन है, जो कि आत्मिक होती है।

कल्पना में भेद

कल्पना की प्रकृति एवं प्रकार्य के उपरांत कॉलरिज कल्पना का वर्गीकरण करते हुए इसके दो भेद बताते हैं –

1. मुख्य कल्पना (Primary Imagination),
2. गौण कल्पना (Secondary Imagination).

'बायोग्राफिया लिटरेरिया' में कॉलरिज लिखते हैं कि, ''मेरे विचार से कल्पना या तो मुख्य होती है या गौण। मुख्य कल्पना ही मेरे अनुसार समस्त मानव–ज्ञान की जीवंत शक्ति और प्रमुख माध्यम होती है। वह असीम में होने वाली अनंत सृजन प्रक्रिया की ससीम मन में आवृत्ति होती है। गौण कल्पना को मैं मुख्य कल्पना की छायामात्र मानता हूँ।'' डॉ. देवेन्द्रनाथ शर्मा ने 'बायोग्राफिया लिटरेरिया' में व्यक्त परिच्छेद की दुरूहता का उल्लेख करते हुए कॉलरिज के विचारों को सरल एवं सहज रूप में प्रस्तुत किया है। इनके अनुसार, ''समस्त जागतिक प्रपंच को व्यवस्थित रूप मे ग्रहण करने वाली शक्ति को ही कॉलरिज मुख्य कल्पना कहते हैं। मुख्य कल्पना वस्तु जगत की एक–एक वस्तु को ठीक–ठीकाने ढ़ंग से मन में अंकित करती है। यदि वह वैसा न करे, तो लौकिक कार्यकलाप ठप्प पड़ जायेंगे। सजीवता और क्रियाशीलता में गौण कल्पना मुख्य कल्पना के समान ही होती है, वह भी इंद्रिय संवेदनाओं की अस्त–व्यस्तता को दूर कर उनमें व्यवस्था लाती है। किन्तु दोनों में अंतर यह है कि जहाँ मुख्य कल्पना का काम सहज भाव से अनजाने ढंग से चलता है, वहाँ गौण कल्पना का काम सहज ज्ञानपूर्वक और इच्छापूर्वक होता है। कला विधायिनी कल्पना ही गौण कल्पना कहलाती

है। दूसरी चीज यह है कि मुख्य कल्पना केवल प्रत्यक्षाश्रित है, किंतु गौण कल्पना आत्मा, बुद्धि, ज्ञानेंद्रिय–पंचक, इच्छाभाव सबकी सहायता लेती हुई कला सृजन में प्रवृत्त होती है।''

प्राथमिक कल्पना ईश्वर की सर्जना शक्ति के रूप में मनुष्य के मन में प्रतिबिंबित रहती है। अर्थात् असीम सत्ता की चिरंतन सृजन शक्ति का ही ससीम मानव में आवृत्ति है। यह अखिल ब्रम्हांड (असीम ब्रम्ह) उसी की कल्पना या सृजन शक्ति का परिणाम है। असीम ब्रम्ह की कल्पना शक्ति का प्रतिबिम्ब ससीम मनुष्य के मन पर पड़ता है और उसमें कल्पना शक्ति जागृत हो जाती है। ससीम मनुष्य को इसी शक्ति के माध्यम से व्यक्त जगत का ज्ञान होता है।

मुख्य कल्पना वह शक्ति है, जिसके द्वारा इंद्रियगोचर पदार्थों का बोध होता है। हमारी आँखो के सामने न जाने कितनी वस्तुएँ लगातार आती रहती हैं– मकान, सड़क, पेड़, नदी, पक्षी आदि। इन सब अव्यवस्थित बिखरे बिंबो को व्यवस्थित कर यह ज्ञान कराती है। यह एक जीवित एवं महत्वपूर्ण शक्ति है, जिससे हमें मानवीय पदार्थों का बोध होता है। यदि वह वैसा न करे, तो लौकिक कार्यकलाप ठप्प पड़ जाये। यह वास्तव में एक सहज एवं स्वाभाविक मानवीय गुण है।

गौण कल्पना विशिष्ट लोगों में पायी जाती है। यह एक आत्मिक ऊर्जा है, जिसमें मनः शक्ति, ज्ञान शक्ति, विचार शक्ति, मनोवेग आदि समाहित होते हैं। सजीवता एवं क्रियाशीलता में गौण कल्पना मुख्य कल्पना के समान ही होती है, वह भी एन्द्रिय संवेदना को दूर कर व्यवस्था लाती है। किंतु दोनों में अंतर है। जहाँ मुख्य कल्पना का काम सहज भाव से अनजाने ढंग से चलता है, वहाँ गौण कल्पना का काम ज्ञानवर्धक, इच्छापूर्वक होता है। जैसे– कोई चित्रकार चित्र तैयार करता है, तो उसे कल्पना का सहारा लेना पड़ता है, तब गौण कल्पना बाह्य जगत से प्राप्त एन्द्रिय संवेदनाओं को नये रूप में ढालकर उन्हें नयी आकृति प्रदान करती है। गौण या अनुवर्ती कल्पना प्राथमिक कल्पना का निचला स्तर है। इसके माध्यम से मनुष्य स्वयं सृष्टि रचने में समर्थ होता है। यह दूसरे कोटि की कल्पना ही काव्य क्षेत्र में क्रियाशील होती है।

कॉलरिज से पहले कल्पना और ललित कल्पना में अंतर नही किया जाता था, किंतु कॉलरिज ने इन दोनों में अंतर स्थापित किया।

मुख्य कल्पना और गौण कल्पना में अंतर

1. प्राथमिक कल्पना समन्वयकारी है तथा गौण कल्पना एक प्रकार की रूपंकर शक्ति है।
2. मुख्य कल्पना के अस्तित्व पर ही गौण कल्पना आश्रित है।
3. मुख्य कल्पना सृजन है, जबकि गौण कल्पना पुनः सृजन है।
4. मुख्य कल्पना केवल निर्माण (संघटन) का काम करती है, जबकि गौण कल्पना विघटन और संघटन दोनों करती है।
5. मुख्य कल्पना जनसामान्य के मस्तिष्क में होती है, जबकि गौण कल्पना मुख्यतः दार्शनिक और कलाकार की विशेषता है। अंत में कॉलरिज मुख्य कल्पना को समझ एवं गौण कल्पना को तर्क से जोड़ते हुए मुख्य कल्पना की तुलना में गौण कल्पना को ऊँचा मानते हैं।
6. मुख्य कल्पना अचेतन और अनैच्छिक है, जबकि गौण कल्पना चेतन और एच्छिक है।
7. मुख्य कल्पना हमारे चाहे और बिना जाने काम करती है, जबकि गौण कल्पना हमारे चाहने पर ही काम करती है।
8. कॉलरिज ने गौण कल्पना को मुख्य कल्पना का प्रतिध्वनि कहा है। कॉलरिज कल्पना को ज्ञान की प्रथम सत्ता मानते हैं। कल्पना का संसार मिथ्या न होकर सत्य होता है, क्योंकि कल्पना शाश्वत मस्तिष्क की मानव मन में एक प्रकार की संश्लेषात्मक तथा जादुई शक्ति होती है, जो विरोधी और विसंवादी धर्मों में संतुलन स्थापित करती है। कॉलरिज के अनुसार, ''कविता रचना का वह प्रकार है, जो वैज्ञानिक कृतियों से इस अर्थ में भिन्न है कि उसका तात्कालिक प्रयोजन आनंद है, सत्य नही।''

फैंटेसी

फैंटेसी शब्द ग्रीक के फंतासिया (Phantasia) शब्द से व्युत्पन्न है। पहले fantasia से fantasy बना और फिर उसका संक्षिप्त रूप बना– फैंसी। हिन्दी में इसे ललित कल्पना, रम्य कल्पना, परिकल्पना, स्वप्न

कल्पना इत्यादि विविध नामों से जाना जाता है।

प्लेटो ने कल्पना के लिए 'फैन्टेसिया' शब्द का प्रयोग किया था, जिसका आधार असत्य या मिथ्या होता है। डॉ. भगीरथ मिश्र ने फैन्सी को 'ऊहा' की संज्ञा दी है। इन्होंने फैन्टेसी का अर्थ मानव के प्रवाह रूप में या मांग पर काल्पनिक दुनिया निर्माण करने का अद्‌भूत सामर्थ्य बताया है। फैन्टेसी 'मनोविज्ञान' के क्षेत्र का शब्द है, जिसका अभिप्राय गाल्टन ने बिम्बों में मानव विभिन्नता को बताया गया है।

फैन्टेसी एक तरह की कल्पना है, किन्तु कवि की रचनात्मक कल्पना से इसका स्वरूप भिन्न होता है। फैन्टेसी में में ऐसी कल्पना, जो तर्क सिद्ध नहीं है और एक प्रकार की रहस्यात्मक अंतर्दृष्टि का परिणाम है, 'फैन्टेसी' कही जा सकती है। हिन्दी में फैन्टेसी का सबसे अधिक प्रयोग मुक्तिबोध ने किया है। मुक्तिबोध के अनुसार, बिम्बों को समन्वित, संघटित और परिवर्तित करके नवीन रचना नहीं की जा सकती। रचना में आने वाली बिम्बावलियाँ बेतरतीब और विश्रृंखलित होती हैं, उसकी स्थिति स्वप्न बिम्बों जैसी होती हैं। फैन्टेसी में जीवन का यथार्थ रूपायित नहीं हो पाता, किन्तु तकनीक के रूप में इसका प्रयोग करके जीवन–यथार्थ के बिम्ब प्रस्तुत किये जा सकते हैं। फैन्टेसी का संबंध रचनाकार के अवचेतन मन से होता है। अतः इसमें मन के निगुढ़ तत्वों की झलक मिल जाती है। बच्चनसिंह के अनुसार, ''फैन्टेसी का संबंध स्वप्न और अवचेतन मन में घटित होने वाली घटनाओं की विघटित और बेतरतीब शब्दावली से है, जिसमें बिम्बों, प्रतीकों, मिथकों आदि को अतर्कानुमोदित पद्धति पर उपस्थित किया जाता है।'' देवकीनंदन खत्री ने फैन्टेसी लेखन का उद्‌देश्य माना है– पहला मनोरंजन और दूसरा यथार्थ जीवन से पलायन।

कॉलरिज ने इसे स्मृति का एक रूप माना है, जो देशकाल के क्रम से मुक्त होता है। इनके अनुसार, ''जब सर्जनात्मक कल्पना अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत होकर अतिकल्पना या रम्य कल्पना के रूप में उस विस्मय लोक की ओर ले जाती है, जहाँ तर्क की सीमा निःशेष हो जाती है; ऐसे स्वप्न–लोक की संरचना फैन्टेसी कहलाती है।''

कल्पना और फैन्टेसी

कल्पना के विवेचन के दौरान ही कॉलरिज ललित कल्पना (फैन्सी) का

भी उल्लेख करते हैं। कॉलरिज से पहले ललित कल्पना का इतना स्पष्ट विचार किसी ने नहीं किया। ललित कल्पना की प्रवृत्ति पर विचार करते हुए उसे कल्पना या इमैजिनेशन से स्पष्ट भिन्नता दिखलाना सौन्दर्यशास्त्र के क्षेत्र में कॉलरिज का मौलिक योगदान है। वस्तुतः कल्पना एवं फैन्टेसी के मौलिक स्रोत में स्पष्ट अंतर है। 17वीं सदी में अनुभववादी विचारक टॉमसहाप्स (1588–1679) ने भी कल्पना की स्मृति में संवेदनाओं का अवशेष मानते हुए ललित कल्पना को इससे भिन्न माना। लेकिन 17वीं सदी के ही ड्राइडन (1631–1700) ने इन्हें मानव मन की एक ही शक्ति के दो अलग–अलग नाम कहा और इस शक्ति को बाह्य जगत के अनुभवों पर निर्भर माना। इस तरह कई लोगों का मत था कि कल्पना अनुभव के माध्यम से केवल तथ्य संग्रह करती है।

कल्पना अपेक्षाकृत गंभीर शक्ति मानी गई, जबकि ललित कल्पना उसका हल्का और चंचल रूप। ललित कल्पना अधिक रचनात्मक मानसिक शक्ति होती है और कल्पना के माध्यम से प्राप्त बिम्बों का अभिनव संयोजन करती है। विलियम वड्र्सवर्थ (1770–1850) ने माना कि कविता की सर्जक शक्ति ललित कल्पना नहीं, बल्कि कल्पना है। कविता के लिए अधिक ऊँची सर्जनाशक्ति की आवश्यकता होती है। यह शक्ति कल्पना ही हो सकती है, जिसमें बिम्बों को परिवर्तित करने की और उन्हें मिलाकर नए बिम्बों की रचना करने की क्षमता होती है।

कल्पना प्रतिभा की उपज है, जबकि फैन्टेसी प्रज्ञा की उपज है। कल्पना अंतः प्रेरणा, प्रत्यक्ष इत्यादि स्रोतों से सामग्री ग्रहण करती है, जबकि रम्य कल्पना (फैन्टेसी) स्मृति मात्र होने के कारण इसी से अपनी सामग्री ग्रहण करती है।

कॉलरिज का कल्पना सिद्धांत

कालरिज ने कल्पना को सौन्दर्य विधायिनी तथा सर्जनात्मक शक्ति के रूप में स्वीकार किया है। उनके अनुसार, ''कवि प्रतिभा का शरीर उत्तम बोध है। ऊहा (फैन्सी) उसका वस्त्रावरण है, गति उसका जीवन है और कल्पना उसकी आत्मा है, जो सर्वत्र और प्रत्येक में है और सबको समन्वित कर उसे एक ललित और सुबोध परिपूर्णरूप प्रदान करती है।''

कॉलरिज ने मौलिक काव्य प्रतिभा की निम्नांकित बातों में पहचान निकाली है–

1. विषयानुरूप छंद रचना का माधुर्य,
2. विषय का चयन,
3. कल्पना,
4. विचार की गहराई और उसकी ऊर्जा।

कॉलरिज कोरी जीवनानुकृति को उचित नही मानते। इनके अनुसार, साहित्यकार की महत्ता सृजन करने में है, न कि प्रकृति या जीवन के यांत्रिक अनुकरण में। सृजनात्मकता के लिए कल्पना का होना आवश्यक है। कॉलरिज कल्पना को ज्ञान की प्रथम सत्ता मानते हैं। कल्पना का संसार मिथ्या न होकर सत्य होता है, क्योंकि कल्पना शाश्वत मस्तिष्क की मानव मन में पुनरावृत्ति होती है। कॉलरिज के अनुसार कल्पना एक समन्वयकारी शक्ति है।

मूल्यांकन

सैमुअल टेलर कॉलरिज की कविता और कल्पना के संबंध में जो विचार प्राप्त होते हैं, वे मौलिक एवं पाश्चात्य जगत में महत्वपूर्ण है। कॉलरिज पर जर्मन दार्शनिक शेलिंग और काण्ट का प्रभाव था, यह डॉ. भगीरथ मिश्र भी स्वीकारते हैं। कॉलरिज के कल्पना संबंधी कथन, बिम्ब रचना की सार्थकता पर विशद और सूक्ष्म प्रकाश भी डालते हैं। वड्र्सवर्थ के साथ 'लिरिकल बैलेड्स' के प्रकाशन से दोनों कवियों को यश मिला। कॉलरिज ने अपने मित्र वड्र्सवर्थ और उनकी बहन 'डोरोथी' से प्रेरणा ग्रहण कर कल्पना और फैन्टेसी सिद्धाँत का प्रवर्तन किया, जिसे विश्व स्तर पर ख्याति प्राप्त हुई। कॉलरिज प्रथम वह पाश्चात्य आलोचक है, जिन्होंने आलोचना का दर्शन, मनोविज्ञान और तत्व मीमांसा के साथ समन्वय स्थापित किया।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. देवेन्द्रनाथ शर्मा, पाश्चात्य काव्यशास्त्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली।
2. निर्मला जैन और कुसुम सेठिया, पाश्चात्य साहित्य चिंतन, विश्वविद्यालय

प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली।

3. डॉ. भगीरथ मिश्र, पाश्चात्य काव्यशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी।
4. डॉ. सत्यदेव चौधरी, डॉ.शान्ति स्वरूप गुप्त, भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र, अशोक प्रकाशन, नवीन संस्करण 2018.
5. प्रो. हरिमोहन, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र की पहचान, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2013.

■■

(6)

मैथ्यू आर्नाल्ड : आलोचना का स्वरूप और प्रकार्य

वासुदेव प्रसाद पटेल

मैथ्यू आर्नाल्ड का काव्य एवं आलोचना जगत में पदार्पण से पहले, पाश्चात्य साहित्य जगत में स्वच्छंदतावाद स्थापित हो गया था। उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में स्वच्छंदतावादी साहित्य अपने चरम उत्कर्ष में था। इंग्लैण्ड के इतिहास में विक्टोरियन युग के समय में फ्रान्स में ऐसे साहित्य एवं आलोचना को सर्वाधिक महत्व प्राप्त था, जिसमें सौन्दर्य की प्रधानता थी। अंग्रेजी आलोचकों एवं समीक्षा शास्त्रियों ने एक मात्र सौन्दर्य तत्व की प्रधानता स्वीकार नहीं की। पूर्व के आलोचकों द्वारा बार–बार कवियों की पूर्ण स्वतंत्रता का समर्थन करने के कारण स्वच्छंदतावाद अपनी सीमा लांघते हुए उस स्तर में पहुंच गया, जिसे हम चरम उच्छृंखलता के अतिरिक्त कुछ नहीं कह सकते। इस स्थिति में काव्य रचना को कुछ नियमों, नैतिक बंधनों और अनुशासन में रखना जरूरी हो गया। ऐसी परिस्थिति में पाश्चात्य अंग्रेजी साहित्य में महान आदर्शोन्मुख यथार्थवादी आलोचक मैथ्यू आर्नाल्ड का अवतरण हुआ। हिन्दी आलोचना साहित्य में जो स्थान आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को प्राप्त है, वही स्थान पाश्चात्य आलोचना जगत में मैथ्यू आर्नाल्ड का है।

---

* सहायक प्राध्यापक – हिन्दी, शहीद वीर नारायण सिंह शासकीय महाविद्यालय जोबी–बर्रा, जिला–रायगढ़ (छ. ग.), मो. – 9826964406, 9098976436

जीवन परिचय

मैथ्यू आर्नाल्ड का जन्म सन् 24 दिसम्बर 1822 ई. में लेलेहम नामक स्थान पर इंग्लैण्ड में हुआ। मृत्यु 65 वर्ष की आयु में 15 अप्रैल 1888 को लिवरपुल में हृदयाघात से हुई। इनके पिता श्री थॉमस आर्नाल्ड रग्बी स्कूल में हेडमास्टर थे। माता श्रीमती मैरी पेनरोज गृहिणी थी। प्रारंभिक शिक्षा रग्बी स्कूल, लेलेहम में लेने के पश्चात उच्च शिक्षा बैलियाल कॉलेज और ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में पूरी की। ऑक्सफोर्ड से ही स्नातक पूरा करने के बाद फेलो ऑफ आरियल की उपधि प्राप्त की। इनका विवाह जस्टिस विलयम वाइटमेन की बेटी फ्रांसिस लूसी से 1851 में हुआ। विवाह के बाद इन्होंने आरंभ में स्कूल निरीक्षक के रूप में कार्य किया। सन् 1857 में ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में कविता के प्रोफेसर नियुक्त हुए। इन्होंने एक शिक्षाशास्त्री के रूप में विभिन्न देशों की यात्रा कर वहां की शिक्षा पद्धति का अध्ययन किया।

व्यक्तित्व और कृतित्व

संस्कृति और नैतिकता के उन्नायक मैथ्यू आर्नाल्ड का एक कवि, निबंधकार और आलोचक के रूप में पाश्चात्य साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। सामान्य रूप से मैथ्यू आर्नाल्ड के साहित्यिक जीवन का आरंभ काव्य रचना से ही हुआ, परन्तु स्वभाव एवं कर्म दोनों ही दृष्टि से पहले आलोचक थे, बाद में कवि। सन् 1857 में मैथ्यू आर्नाल्ड आक्सफोर्ड में कविता के प्रोफेसर चुने गये। 1862 में दूसरी बार फिर से चुने गये। आगे उन्होंने यहीं से व्याख्यान के लिये संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा का दौरा किया। 1883 में उन्हें अमेरिका ऐकेडमी आफ आर्टस एण्ड सांइसेस में विदेशी मानव सदस्य के रूप में चुना गया। ऑक्सफोर्ड में प्रोफेसर नियुक्ति के साथ ही साहित्यालोचन के क्षेत्र में उनका पदार्पण हुआ। उनके समग्र व्यक्तित्व का मूल्यांकन करने के पूर्व साहित्यिक कृतियों एवं उपलब्धियों को जानना जरूरी है। उनकी समग्र कृतियों को हम चार वर्गों में विभाजित कर सकते हैं।

(1) विविध भाव मूलक काव्य कृतियॉ।

(2) शिक्षा संबंधी समीक्षात्मक कृतियॉ।

(3) साहित्यिक समीक्षा संबंधी आलोचनात्मक कृतियॉं।

(4) सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक विषय पर आधारित कृतियॉं।

प्रथम वर्ग में उनकी कविताएँ आती हैं। 1843 में उनकी कविता क्रामवेल को पुरस्कृत किया गया। आर्नाल्ड की प्रमुख काव्य कृतियां इस प्रकार है– द स्ट्रेंड रेवलर (1849), एम्पोडोलक्स आन एटना (1852), पोयम्स बाई मैथ्यू आर्नल्ड (1853), न्यू पोयम्स (1857)। इन काव्य संग्रहों में आर्नाल्ड की चर्चित कविताएँ– रग्बी चैपेल, सोहराब एण्ड रूस्तम, स्कॉलर जिप्सी, थायरसिस तथा डोवर बीच संकलित हैं। दूसरे वर्ग में शिक्षा संबंधी समीक्षा आती हैं। ये इस प्रकार हैं– पापुलर एजुकेशन ऑफ फ्रांस (1861), एफ्रेन्च एटन (1863–64), स्कूल्स एण्ड युनिवर्सिटीज आन द कांटिनेंट (1868), स्पेशल रिपोर्ट आन एलिमेंट्री एजुकेशन एब्राड (1861), रिपोर्ट आन एलिमेंट्री स्कूल (1889)। तृतीय वर्ग में साहित्यिक समीक्षा संबंधी रचना आती हैं। इसमें प्रमुख रूप से आन ट्रान्सलेटिंग होमर, एसेज इन क्रीटिसिज्म (1865), आन द स्टडी ऑफ केल्टिक लिटरेचर (1867), मिक्सड एसेस (1877), एसेज इन क्रीटिसिज्म (1868) अद्वितीय उल्लेखनीय है। इन समीक्षात्मक कृतियों में इनके महत्वपूर्ण आलोचनात्मक निंबंध 'द फक्सन ऑफ क्रीटिसिज्म एट द प्रजेन्ट टाइम' और 'द स्टडी ऑफ पोएट्री' शामिल है। चतुर्थ वर्ग में सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक रचनाएँ आती हैं, जिसमें कल्चर एण्ड एनार्की (1869), सेंटपाल एण्ड प्रोटेस्टिटिज्म (1870), फ्रेंडशिप्स गालैण्ड (1871), लिटरेचर एण्ड डॉग्मा (1873), गॉड एण्ड बाइबिल (1875), लास्ट एसेज आन चर्च एण्ड रिलिजन (1877) आदि उल्लेखनीय हैं।

काव्य के संबंध में मैथ्यू आर्नाल्ड के विचार

मैथ्यू आर्नाल्ड के साहित्यिक जीवन की शुरूआत कविता रचने से प्रारम्भ हुई। स्वयं कवि होने के कारण वे कविता की बारीकियों से परिचित थे। वे अपनी काव्यधाराओं को आवश्यकतानुसार परिवर्तित, परिमार्जित एवं परिवर्धित करते रहते थे। वे काव्य विषय के रूप में चयनित कार्य–व्यापार का समय के साथ संबंध स्वीकार नहीं करते। आर्नाल्ड के मतानुसार, काव्य प्राचीन हो या नवीन हो, अगर संबंधित काव्य का विषय मानव संवेगों को आंदोलित करने की क्षमता है, तो वह उत्कृष्ट काव्य विषय हो सकता है।

मैथ्यू आर्नाल्ड उसी साहित्य को महत्व देते हैं, जो जीवन और समाज से पस्पर जुडा हुआ हो, इन दोनों से रहित साहित्य का इनकी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं था। इनके विचार से कविता का मुख्य उद्देश्य यही है कि काव्य द्वारा समाज में नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना हो।

मैथ्यू आर्नाल्ड ने उस समय काव्य में व्याप्त रोमांटिक मान्यताओं का खंडन करते हुए प्राचीन क्लासिकल (अभिजात्यवादी) सिद्धांतों की पुनर्स्थापना का प्रयत्न किया। आर्नाल्ड के विचार से पुराने, अभिजात्यवादी सिद्धांत अनुकरणीय है। विशेष रूप से अरस्तु एवं होमर के विचार को आर्नाल्ड बहुत महत्वपूर्ण मानते थे। इनकी स्पष्ट मान्यता थी कि महान काव्य के सृजन के लिए काव्य की विषयवस्तु उदात्त हो एवं शैली भव्य हो। आर्नाल्ड के विचार से सामयिक विषय पर लिखे गए काव्य जीवंत नहीं हो सकते। अर्थात् समसामयिक विषयों पर लिखी गई कविता दीर्घजीवी नहीं होती। अतः कालजयी रचना प्रस्तुत करने के लिए हमें ऐसे विषय चुनने चाहिए, जिसमें मानवीय भावों एवं संवेदनाओं की प्रतिष्ठा हो। आर्नाल्ड प्राचीन युनानी साहित्य की सफलता के तीन कारण बताए हैं–

1) काव्य व्यापार की महानता।

2) चरित्रों की उदात्तता।

3) स्थितियों की तीव्रता।

इन तीनों के अभाव में कोई भी काव्य कालजयी नहीं बन सकता। उन्होंने काव्य कर्म के लिए चार बातों पर विशेष बल दिया है–

1) काव्य की विषयवस्तु महत्वपूर्ण हो।
2) रचना प्रक्रिया के क्रम में संरचनात्मक अन्विति, अनुपात तथा सामंजस्य पर ध्यान देना चाहिए।
3) वर्णन में भव्य शैली का प्रयोग हो।
4) आनंद एवं मनोरंजन के साथ कविता नैतिक और सांस्कृतिक उत्थान भी करे।

मैथ्यू आर्नाल्ड की सबसे महत्वपूर्ण स्थापना यही है कि ''कविता जीवन की आलोचना है'', अर्थात् कवि की महत्ता इस बात में है कि वह जीवन से जुडे हुए विचारों को, जीवन कैसे जीना चाहिए से किस तरह जोड़

पाता है। "Poetry is a criticism of life." that the greatness of a poet lies in his powerful and beautiful application of ideas to life - to the question, How to live. आर्नाल्ड के सरोकार सांस्कृतिक एवं नैतिक हैं। इसलिए डॉ. निर्मला जैन के शब्दों में कहें, तो ''उनकी दिलचस्पी कविता क्या है? की अपेक्षा, कविता क्या करती है में अधिक थी'' आर्नाल्ड का आग्रह समाज में कविता की सक्रिय भूमिका पर है। आर्नाल्ड के मतानुसार कविता जीवन को समझने की दृष्टि देती है और उसे स्पष्ट करती है। काव्य के सभी पहलू जीवन से जुड़े हुए हैं। इन्होंने कविता द्वारा सामजिक नैतिक आदर्श की प्रतिष्ठा के लिए विषय चयन पर अत्यधिक बल दिया। सटीक विषय चयन करने पर काव्य सशक्त बनता है। उन्होंने वस्तु और रूप के सांमजस्य पर बल दिया। इनका मानना है कि यदि काव्य का विषय उत्कृष्ट है, उसमें सत्य एवं गांभीर्य है; तो उसमें शैली का उत्कर्ष स्वयं समाविष्ट हो जायेगा। प्रश्न यह है कि हम उत्कृष्ट काव्य विषय किसे माने? आर्नाल्ड उत्तर देते हुए लिखते हैं कि मानव के वे कार्य–व्यापार, जो समस्त राष्ट्रों में सदैव काव्य के शाश्वत विषय रहे हैं, उत्कृष्ट काव्य विषय हैं। इन्होंने उन कार्य–व्यापारों को शाश्वत महत्व का माना, जो मानव के सहज संस्कारों और उनकी मूल भावनाओं को आंदोलित करें तथा जिनका जातिय मानस में स्थायी वास होता है। ऐसे भाव काल–निरपेक्ष, यानि कालातीत होते हैं। ये भावनाएँ स्थायी और अपरिवर्तनीय है। आर्नाल्ड जिस प्रकार कविता के सांस्कृतिक, नैतिक पक्षों को लेकर बात करते हैं, इससे ये कविता के शिक्षक और उपदेशक अधिक दिखाई पडते हैं।

निष्कर्ष रूप में आर्नाल्ड काव्य सत्य, काव्य सौन्दर्य के निर्धारित नियमों के अधीन कविता को जीवन की आलोचना स्वीकार करते हैं।

मैथ्यू अर्नाल्ड की आलोचना का स्वरूप

मैथ्यू आर्नाल्ड की आलोचना दृष्टि को उनके द्वारा लिखित आलोचनात्मक निबंध– 'द फंक्शन आफ क्रीटिसिजम एंड द प्रजेन्ट टाइम' तथा 'स्टडी ऑफ पोइट्री' से भली भांति समझा जा सकता है। आधुनिक अंग्रेजी साहित्य के महान आलोचकों में इनकी गिनती होती है, इन्होंने 50 वर्षों तक अरस्तु की भांति अपने युग को प्रभावित किया। इससे पहले, अंग्रेजी साहित्य के आलोचकों में कालरिज का ही नाम आता है। स्वयं कवि होने के कारण तथा

काव्य रचना के पश्चात् आलोचना कर्म में उतरने के फलस्वरूप उनकी आलोचनात्मक दृष्टि युग सापेक्ष अनुकरणीय है। आर्नाल्ड का समय वैज्ञानिक चितंन का युग था, तमाम सत्यों को भौतिक रूप से समझने का प्रत्यन किये जा रहे थे। विज्ञान से जीवन में ऐसा परिवर्तन आने लगा, जिससे भावुकता, संवेदना कुंठित होने लगी। चारों ओर कोलाहल बढ़ गया और समाज में ये सुनाई देने लगा कि काव्य के दिन समाप्त हो गये। 'टामस लव पीकॉक' ने काव्य की निष्प्रयोजनियता को प्रमाणित करने के लिए एक पुस्तिका की ही रचना कर डाली। ऐसे समय में कविता और आलोचना दोनों को जीवंत करने के लिए आर्नाल्ड ने सजग प्रहरी का काम किया। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में प्रोफेसर आफ पोइट्री के पद पाने के बाद पेशेवर रूप से आलोचना संबंधी व्याख्यान दिए। बाद में यही व्याख्यान अनेक शीर्षकों से उनके निबंधों की सीरिज 'एसेज आन क्रीटिसीजम' में प्रकाशित हुए।

आलोचक और आलोचना

मैथ्यू आर्नाल्ड ने जहाँ कविता को जीवन की आलोचना कहा, वहीं साहित्यिक आलोचना पर भी आलोचकों पर बहुत बडा दायित्व सौंपा। आलोचक की भूमिका केवल कविता के मूल्यांकन तक ही सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि आलोचक को बहुत बडा चिंतक और विचारक भी होना चाहिए। इनके ऊपर सांस्कृतिक, सामाजिक विकास की जिम्मेदारी होती है। कविता और आलोचना दोनों पर सम्यक दृष्टि रखते हुए इन्होंने आलोचना को कविता से निम्नतर दर्जा नहीं दिया। ये आलोचना को एक श्रेष्ठतर कार्य मानते थे। आलोचक के कार्य पर टिप्पणी करते हुए आर्नाल्ड कहते हैं कि आलोचक का कार्य काव्य–रचना से भी अधिक महत्वपूर्ण है। आलोचक के मुख्यतः तीन गुण होने चाहिए– (1) आलोचक वस्तुओं को अपने निरपेक्ष रूप में देखे और उन्हें समझ कर उनका वास्तविक अध्ययन करें। (2) आलोचक में एक मिशनरी स्पिरिट होना चाहिए और जो कुछ उसने अपने प्रगाढ़ अध्ययन और मनन से प्राप्त किया है, उसे वह हस्तांरित करे, जिसके अनुसार विश्व में परिवर्तन आ सके। (3) आलोचक का दायित्व लेखकों के प्रति यह है कि वह एक ऐसे वातावरण का निर्माण करे, जिसमें लेखक साहित्य की सर्जना कर सके।

आर्नाल्ड ने आलोचना के निर्वाह करने के लिए कुछ मानदण्ड भी सुनिश्चित किये। उनके लिए यह महत्वपूर्ण था कि श्रेष्ठ काव्य या उत्कृष्ट काव्य का आदर्श, आलोचक के समक्ष हो और वह किसी भी काव्य रचना के मूल्यांकन की कसौटी बने। आर्नाल्ड साहित्य के मूल्यांकन के लिए इसे 'टच स्टोन मैथड' का नाम देते हैं। हिन्दी में इसे आलोचना का निकष या प्रतिमान पद्धति कह सकते हैं। यह किसी भी कवि या रचनाकार की कृति के मूल्यांकन के लिए एक कसौटी का काम करता है। इसमें उन्होंने किसी भी महान कृति के महत्वपूर्ण अंश को एक मानक के रूप में प्रयोग कर, किसी अन्य कृति का मूल्यांकन करने का सुझाव दिया। स्वयं इस तरह आर्नाल्ड ने कई कवियों की समीक्षा की। कविता के मूल्यांकन के सबंध में आर्नाल्ड ने आलोचना की तीन पद्धतियाँ दी–

(1) ऐतिहासिक (Historical), (2) वैयक्तिक (Personal), (3) वास्तविक (Real).

(1) ऐतिहासिक (Historical)– ऐतिहासिक आलोचना को मैथ्यू आर्नाल्ड सही नहीं मानते। इसमें इतिहास के परिप्रेक्ष्य में कृति का मूल्यांकन किया जाता है। उदाहरण के लिए, भारतीय साहित्य में कालीदास, तुलसीदास; पाश्चात्य साहित्य में होमर, अरस्तु रचित काव्य ग्रंथ को उत्कृष्ट माना गया है। ये महान कवि माने जाते हैं। केशव के काव्य को उतना उत्कृष्ट नहीं माना जाता। कवियों के बारे में ये बातें ऐतिहासिक तथ्य के रूप में प्रयोग की जाती है। आर्नाल्ड यहाँ पर इन ऐतिहासिक तथ्यों से परे रहकर, अतीत से बिना प्रभावित हुए कवि की कृतियों का मूल्यांकन करने की सलाह देते हैं।

(2) वैयक्तिक (personal)– वैयक्तिक आलोचना द्वारा रचना का शुद्ध एवं सार्थक मूल्यांकन नहीं हो सकता। इसमें व्यक्ति की निजी पसंद एवं व्यक्तिगत रूचि हावी हो जाती है। जैसे– किसी व्यक्ति को प्रकृति पसंद है, तो वह प्रकृति संबंधी रचना को श्रेष्ठतर मानेगा। वैयक्तिक आलोचना व्यक्तिगत रूप से प्रभावित होने के कारण प्रभाववादी आलोचना बन जाती है, तथा प्रभाववादी आलोचना से काव्य का सही निर्णय नहीं किया जा सकता। अपनी रूचि के अनुसार मूल्यांकन होने के कारण आर्नाल्ड इसे भी स्वीकार नहीं करते।

(3) वास्तविक (real)– वास्तविक आलोचना में कृति का निरपेक्ष भाव से मूल्यांकन किया जाता है। आर्नाल्ड वास्तविक मूल्यांकन को ही सही मानते हैं। इसमें आलोचक ऐतिहासिक और व्यक्तिगत रूचि का परित्याग करते हुए कृति का यथार्थ मूल्यांकन करता है। इसमें आर्नाल्ड आलोचक की तटस्थता एवं निष्पक्षता पर विशेष बल देते हैं। वास्तविक आलोचना से ही किसी कवि की कृतियों का सही मूल्यांकन किया जा सकता है।

मैथ्यू आर्नाल्ड उस समय के इग्लैण्ड में प्रचलित पूर्वाग्रह पूर्ण पृथकतावादी और संकीर्ण विचारधाराओं में बद्ध आलोचना के विरोधी हैं, जिनका उद्देश्य मानव मात्र की सांस्कृतिक पूर्णता न होकर अपने व्यावहारिक एवं लौकिक स्वार्थों की सिद्धि है। आर्नाल्ड ने अंग्रेजी आलोचना की इस संकीर्ण दृष्टिकोण को छोड़ने का सुझाव दिया। इसके लिए उन्होंने प्राचीन साहित्य में ग्रीक, लैटिन तथा समकालीन साहित्य में फ्रांसीसी, जर्मन आदि आधुनिक साहित्य का अध्ययन–मनन को अनिवार्य बताया। इस तरह प्रकारांतर से आर्नाल्ड ने ही आलोचना की तुलनात्मक पद्धति का सूत्रपात किया।

आर्नाल्ड ने जहाँ आलोचक को साहित्य के प्रेरक के रूप में देखा, वहीं दूसरी ओर उनका कहना है कि "The critical faculty is lower than the inventive". कवि की सृजनात्मक शक्ति को आलोचना की शक्ति से श्रेष्ठ बताते हुए आर्नाल्ड ने आलोचक से यह अपेक्षा की कि कविता को समझने के लिए वह रचनाकार के युग, परिवेश और कवि की जीवनी से भलीभांति परिचित हो, क्योंकि कवि के व्यक्तित्व को समझने से ही रचना का उचित मूल्यांकन हो सकता है। आर्नाल्ड मानते हैं कि श्रेष्ठ सृजनात्मक प्रतिभा को भी श्रेष्ठ सृजन के लिए उपयुक्त सृजनकाल की अपेक्षा होती है। यह कर्तव्य आलोचक का है कि वह सृजन–प्रतिभा और सृजन–क्षण के परस्पर संबध को पहचाने। आर्नाल्ड की यह धारणा आलोचक की निष्पक्षता के विचार के प्रतिकूल पड़ती है।

मैथ्यू आर्नाल्ड की आलोचना दृष्टि का मूल्यांकन

अंग्रेजी आलोचना में मैथ्यू आर्नाल्ड का महत्व असंदिग्ध है, परन्तु उनके योगदान को लेकर बहुत विरोधी बातें भी कही गयी हैं। टी एस इलियट के अनुसार, वे उस युग के कवि एवं समीक्षक हैं, जो भ्रामक और अस्थिरता का युग है। एक ओर इलियट लिखते हैं कि आर्नाल्ड न तो

प्रतिक्रिया वादी है, न ही क्रांतिक्रारी। वे एक युग के सूचक हैं, जैसे कि उनके पूर्व ड्राइडन और जानसन थे। इलियट ने इसे प्रमुख रूप से एक शिक्षक तथा आलोचक की अपेक्षा आलोचना का प्रचारक कहा। वास्तव में इलियट का कथन आर्नाल्ड के बारे में एकांगी है। आर्नाल्ड जिस समय एवं परिस्थिति की उपज थे तथा जिस विचार पद्धति के पोषक थे; उसी के अनुरूप उन्होंने कविता के नैतिक, सांस्कृतिक पक्षों पर बल दिया। इलियट का मूल्यांकन आर्नाल्ड के प्रति पूर्ण न्याय नहीं कर पाता। अंग्रेजी साहित्य में आर्नाल्ड का महत्व ऐतिहासिक है। इन्होंने कविता और आलोचना दोनों के सीमित दायरों को तोड़ कर उन्हें एक विस्तृत क्षितिज प्रदान किया, रोमांटिक काव्य की सीमाओं को भलीभांति पहचान कर व्यक्तिगत अनुभूति एवं भावना से ऊपर उठाकर जीवन की समग्रता तक पहुँचाया। आर्नाल्ड कविता के सामाजिक उद्देश्यों को कभी नहीं भूले, इसलिए कविता जो भी हो, जैसे हो; वह अपने मूल में जीवन की आलोचना ही है।

कविता के लिए उपयुक्त विषय चयन की चर्चा करते हुए आर्नाल्ड पुरातन, सनातन, शाश्वत विषय पर इतना बल देते हैं कि नवीन सामयिक विषय अछूते रह जाते हैं। यह उनकी आलोचना दृष्टि की बड़ी कमी है। कहीं–कहीं आर्नाल्ड के विचार स्वंय में उलझे हुए एवं विरोधाभाषी प्रतीत होते हैं। इसका कारण यह है कि कवि–कर्म से प्रवृत्त होकर आलोचक फिर सांस्कृतिक एवं धर्म प्रचारक के रूप में हमारे सामने आते हैं। यह आर्नाल्ड की चिंतन की सीमा है। वस्तुतः आर्नाल्ड की उपलब्धियों पर विचार करते हुए एक और तथ्य पर विचार करना जरूरी हो जाता है कि नैतिकता और संस्कृति के आग्रहों के कारण कविता को जीवन की आलोचना स्वीकार करते हुए भी इन्होंने काव्य–सत्य और काव्य–सौन्दर्य के निर्धारित नियमों की अवहेलना नहीं की। किसी भी साहित्यकार की कृतियों के मूल्यांकन की कसौटी उनके निजी आदर्श हैं, फिर भी उनकी आलोचना में दृढ़ता और प्रौढ़ता के दर्शन होते हैं। विन्सेट बेकले तथा स्काट जेम्स जैसे विद्वान आर्नाल्ड को विक्टोरियन युग का सबसे बडा आलोचक मानते हैं। विन्सेट बेकले ने उन्हें विक्टोरियन युग के महान साहित्यकारों में सबसे अधिक संवेदनशील बताया। इनके योगदान और महत्व को देखते हुए आचार्य देवेन्द्र नाथ शर्मा लिखते हैं– ''मौलिक उद्भावना की दृष्टि से उनका महत्व भले

ही न हो, परन्तु आलोचना की स्वायत्तता स्थापित करने का श्रेय आर्नाल्ड को अवश्य दिया जायेगा।''

निष्कर्ष

समग्रतः आर्नाल्ड अंग्रेजी आलोचना साहित्य के प्रकाश स्तंभ हैं, जिन्होंने निर्भिकता से आलोचना का मार्ग प्रशस्त किया। आर्नाल्ड उन्नीसवीं सदी के बड़े समीक्षकों में से एक हैं। पाश्चात्य अंग्रेजी साहित्य में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। पाश्चात्य आलोचना साहित्य के इतिहास में इनका नाम अमर रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. आचार्य देवेन्द्र नाथ शर्मा, पाश्चात्य काव्य शास्त्र।
2. डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धांत।
3. संम्पादक डॉ. सावित्री सिन्हा, पाश्चात्य काव्य शास्त्र की परंपरा।

■■

(7)

टी. एस. इलियट : परम्परा की परिकल्पना और वैयक्तिक प्रज्ञा

डॉ. रेखा दुबे

टी. एस. इलियट का पूरा नाम थॉमस स्टर्न्स है। इलियट एक अमेरिकी लेखक होने के साथ–साथ एक कवि, साहित्यिक आलोचक के रूप में उनकी ख्याति व्याप्त है। इलियट का परम्परावादी और वैयक्तिक प्रज्ञा सिंद्धात पाश्चात्य काव्य शास्त्र की देन है।

परम्परा का अर्थ प्रथा, प्रणाली से है। हम सभी इस बात से अवगत हैं कि किसी भी समाज की जो जीवन शैली होती है, उसे उसके पूर्वजों से विरासत में प्राप्त होती है और यह पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरित होने वाली प्रक्रिया है। उसी प्रकार संस्कृति के भी कई रूप बने होते हैं, जो परम्परा बन जाती है और इसे हम सभी आत्मसात् करते हैं। इलियट परम्परावादी अर्थात् परम्पराओं पर विश्वास रखते थे। इलियट के पूर्व जिन आलोचकों और कवियों ने अपने विचार प्रकट किए और साथ–ही–साथ जो स्थापनाएँ दी, उसे इलियट ने स्वीकार भी किया।

सन् 1928 में इलियट ने अपने विषय में स्पष्ट किया कि ''मैं राजनीति में राजतन्त्रवादी, धर्म में एंग्लो कैथोलिक और साहित्य में क्लासिकवादी हूँ''। उनके इस वक्तव्य से पूर्व सभी यही समझते थे कि इलियट फ्रांस के प्रतीकवादियों से प्रभावित हैं, इसलिए उनमें स्वच्छन्दतावाद दृष्टिगत होता

* सहायक प्राध्यापक (हिन्दी), डॉ. सी. वी. रामन् विश्वविद्यालय, कोटा, बिलासपुर, मो. 9827486874, Email : rekhadubey5336@gmail.com

है और यह घोषणा भी आश्चर्य चकित करने वाली थी कि इलियट ने स्वयं को क्लासिकवादी क्यों कहा? क्लासिक से तात्पर्य परम्परावादी और क्लासिक परम्पराओं को मानने से होता है।

इलियट के काव्य में टी. आई. ह्यूम और एजरा पाउण्ड का भी प्रभाव पड़ा। टी. आई. ह्यूम से नव युवा वर्ग अत्यधिक प्रभावित थे। एजरा पाउण्ड ने सन् 1915 में एक पत्र पर लिखा कि श्कविता को गद्य के समान ही लिखना चाहिए। कविता में घिसे–पिटे वाक्यांश नहीं होना चाहिए। इससे बचने के लिए कवि को वर्णनीय वस्तु को पूर्ण सावधानी के साथ देखना चाहिए। तथ्यों का सटीक बिम्बात्मक वर्णन करना चाहिए। उसके लिए केवल वस्तुनिष्ठता अभिव्यक्ति आवश्यक है। कविता में ऐसा होना चाहिए, जो परिस्थिति विशेष में किसी भावावेगवश वस्तुतः नहीं कहा जाता है।''

इससे यह बात स्पष्ट होती है कि जिन विचारकों और कवियों से इलियट प्रभावित हुए, वे भी परम्परावादी थे। साथ–ही–साथ स्वच्छंदतावादी तथा विकासवाद के विरोधी थे। इलियट ने स्वयं परम्परावादी होने की बात स्पष्ट रूप से कही है। वे परम्परा को अंधानुकरण न मानकर साहित्य के प्रभाव के साथ जुड़ना तथा ऐतिहासिक चेतना और ज्ञान को स्वीकार करते हैं।

इलियट के अनुसार, ''परम्परा अत्यंत महत्वपूर्ण वस्तु है। परम्परा को छोड़ देने पर हम वर्तमान को भी छोड़ बैठेंगे।'' यहाँ परम्परा से तात्पर्य उन सभी स्वाभाविक कार्यों, रीति–रिवाजों (धार्मिक कृत्यों से लेकर नवागन्तुक को अभिवादन करने के स्वीकृत तरीकों) से है, जो स्थान विशेष में रहने वाले एक समुदाय के व्यक्तियों के रक्त–संबंध को व्यक्त करते हैं। परम्परा का गद्यात्मक अर्थ है कि जो परम्परा है, उसका महत्वपूर्ण तत्व इतिहास बोध है। अर्थात् परम्परा एक अन्धानुकरण नहीं है, और न ही जो प्राचीन रूढ़ियाँ हैं, उसे मौन रूप में स्वीकृति करना है; बल्कि परम्परा से ज्ञान प्राप्त करके उसे विकास के लिए भी तत्पर करना है। यही परम्परा का गद्यात्मक स्वरूप है। समाज के साथ जो परम्परा मिल जाये, वही गतिमान होगा।

इलियट के पूर्व स्वच्छन्दता का बोल बाला था, जिससे कविता आत्मनिष्ठा हो गयी थी। इलियट ने इसका विरोध किया और जब उन्होंने देखा कि चहुँ ओर अव्यवस्था फैली है, जिसके कारण साहित्य अपने लक्ष्य

से भटकता जा रहा है, समसामयिक कविता परम्परा विहीन होने लगी थी, तब इन्होंने कविता के क्षेत्र में एक व्यवस्था स्थापित की।

विभिन्नताओं को एकता के सूत्र में बाँधने का कार्य परम्परा का होता है। इलियट ने सन् 1921 में ''परम्परा और वैयक्तिक शक्ति'' निबंध के माध्यम से अपने विचार व्यक्त किए और यह भी तय किया कि परम्परा और संस्कृति का सम्बन्ध अटूट है। संस्कृति किसी जाति, कला, दर्शन, साहित्य की परिचायक होती है और अतीत से प्रदत्त अनुभव से ही वर्तमान के स्वरूप का उचित ज्ञान प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार नवागन्तुक युग का अभिवादन करने के लिए अतीत दिशा–निर्देश करता है, मार्गदर्शन प्रदान करता है। धर्म और संस्कृति के विषय में इलियट यह मानते हैं कि संस्कृति के अत्यधिक अंशों की उत्पत्ति धर्म से होती है। समस्त देशों की संस्कृति भिन्न–भिन्न होती है और जब एक संस्कृति दूसरी संस्कृति के सम्पर्क में आती है, तब वह अपनी संस्कृति को सुरक्षित रखते हुए आगत संस्कृति को आत्मसात कर विलक्षण हो जाती है।

डॉ. भगीरथ दीक्षित के अनुसार परम्परा का यह सिद्धांत इलियट का मौलिक आविष्कार नहीं है। मैथ्यू आर्नाल्ड ने साहित्य के क्षेत्र में और एडयण्ड वर्क ने रचना के क्षेत्र में परम्परा को महत्वपूर्ण बताया है। यह ठीक है कि इलियट ने परम्परा सिद्धांत को अपनी साहित्य समीक्षा में अत्यधिक महत्व दिया और विस्तृत विवेचना की है, किन्तु बीज रूप में वह मैथ्यू आर्नाल्ड के समीक्षात्मक लेखों में निहित है। परन्तु क्या परम्परा है और क्या परम्परा नहीं है, इसका निर्णय करना अत्यंत कठिन कार्य है।

इलियट का परम्परा सिद्धांत न तो रूढ़िवादी है और न ही मौलिकता का विरोध है। एक तरफ देखा जाये, तो रूढ़ि का पालन करने पर साहित्य के विकास में रूकावट उत्पन्न होना स्वाभाविक है; तो दूसरी तरफ परम्परा गतिशील चेतना और चिर गतिशीलता से भरी सम्भावनाएँ हैं। जहाँ परम्परा नवीन मूल्यांकन करने में सहायक है, तो वहीं पर प्राचीनता के विकास के साथ–साथ मौलिकता भी जरूरी है। परम्परा के अनुभव के बिना हमें यह ज्ञात नहीं हो सकता है कि मौलिकता क्या है और कहाँ है? अतीत को वर्तमान में देखना रूढ़िवादिता नहीं, बल्कि मौलिकता है।

परम्परा के ज्ञान से यह पता चलता है कि किसी भी रचना में मौलिकता के समावेश के लिए क्या किया जा सकता है और उसे क्या करना चाहिए। साथ–ही–साथ वह जो भी कर रहा है, उसका महत्व (मूल्य) क्या है, उपयोगिता क्या है; यह भी पता चलता है। परम्परा के ज्ञान से कर्तव्य–ज्ञान और मूल्यों का साहित्यिक–ज्ञान सम्भाव्य है।

इलियट के परम्परा सिद्धांत का महत्व एवं विशेषताएँ

1. परम्परा इतिहास बोध है।
2. यह न तो रूढ़िवादी है, न ही मौलिकता का विरोधी है।
3. परम्परा अर्जित सम्पत्ति है।
4. परम्परा से प्राचीन काव्यों का मूल्यांकन करके नवीन सृजन कार्य संभव है।
5. परम्परा के अभाव में मौलिकता की जाँच नहीं की जा सकती।
6. परम्परा से ज्ञान का विस्तार ही नहीं, अपितु वर्तमान से जुड़ाव है।

वैयक्तिक प्रज्ञा

टी. एस. इलियट का वैयक्तिक प्रज्ञा के विषय में विचार है कि भावों का उद्वेग कविता है। मनुष्य के भावों की सहज अभिव्यक्ति, जो भावानुरूप कविता बनकर निकलती है, को वैयक्तिक प्रज्ञा की संज्ञा दी जा सकती है। पंरतु इलियट ने इसका विरोध किया। उनका मत है कि व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति की अपेक्षा, व्यक्तित्व से पलायन होना है। इलियट का मानना है कि जब कविता पूर्ण हो जाती है, तो कवि को असहनीय भार से मुक्ति मिल जाती है, जिससे कवि को धनात्मक आनंद की अपेक्षा ऋणात्मक अथवा नकारात्मक आनंद प्राप्त हो जाता है।

इलियट के अनुसार, ''वास्तविक जीवन के भावों की महत्ता और उत्कण्ठा कविता में महत्वपूर्ण नहीं है, अपितु कला प्रक्रिया उस दबाव की वह महत्वपूर्ण उत्कण्ठा है, जिसके कारण मिश्रण तैयार होता है।''

इस प्रकार इलियट के अनुसार परम्परा से जुड़कर ही कवि वैयक्तिक क्षमता को सफलतापूर्वक प्रकाश में ला सकता है। किसी भी कवि की कृति सर्वाधिक सशक्त तभी होगी, जब वह पूर्ववर्ती कवियों का भी उस पर प्रभाव होगा और उसे विशेष रूप से व्यक्त किया गया हो। कवियों ने जितना भी

आत्मसात किया या इतिहास बोध का गहन अध्ययन किया, उसे उतनी अधिक प्रसिद्धि प्राप्त हुई और यही बातें एक श्रेष्ठ कवि को जन्म देती है। कभी–कभी ऐसा होता है कि ज्ञान से आक्रांत होने पर उसकी संवेदना कुंद हो जाती है। कवि के लिए अतीत को आत्मसात करना अनिवार्य है।

निष्कर्षत : इलियट परम्परा के महत्व को स्पष्ट करते समय इस बात पर बल देते हैं कि कवियों का मूल्यांकन परम्परा के सापेक्ष प्राचीन इतिहास–बोध के साथ–साथ परम्परा, गतिशील चेतना, ज्ञान का विस्तार और संस्कृति से जुड़ाव है। इस प्रकार इन सभी के सामंजस्य से वैयक्तिक प्रज्ञा सम्भव है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र, भारतीय विद्या संस्थान, वाराणसी।
2. पाश्चात्य काव्य शास्त्र के सिद्धान्त, शांति स्वरूप गुप्त।
3. पाश्चात्य काव्य शास्त्र के सिद्धान्त, कृष्णदेव शर्मा।
4. पाश्चात्य काव्य शास्त्र के सिद्धान्त, मैथिली प्रसाद भारद्वाज।

■■

(8)

टी. एस. इलियट : निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत, वस्तुनिष्ठ समीकरण, संवेदनशीलता का असाहचर्य

शाहिद हुसैन

निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत

निर्वैयक्तिकता का अर्थ है– ''कवि के व्यक्तिगत भावों की विशिष्टता का समानीकरण होना।'' हिंदी के कुछ विद्वानों ने इलियट की निर्वैयक्तिकता के सिद्धांत को 'काव्यगत अव्यक्तिवाद' का नाम दिया। यह सिद्धांत साधारणीकरण के बहुत नजदीक है, किंतु उसका पर्याय नहीं माना जा सकता। निर्वैयक्तिकता सिद्धांत स्वच्छंदतावादियों के काव्य सिद्धांत के विपरीत है। इलियट का दावा है कि ''स्वच्छंदतावादियों की रचना प्रक्रिया भावों की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि भावों का वमन करती है।'' वस्तुतः अच्छी कविता वह होती है, जिसमें कवि अपने भावतिरेक का प्रदर्शन नहीं करता; बल्कि अपनी भावनाओं से यथासंभव तटस्थ रहते हुए रचनाशील रहता है। इलियट के अनुसार, ''भोगने वाले मन और रचना करने वाले मन के बीच अनिवार्यतः एक अंतराल बना रहता है और जितना ज्यादा यह अंतराल होता है, रचना उतनी ही महान होती है।'' इलियट अनेकता को एकता में बांधने के लिए परंपरा को आवश्यक मानते थे, जो व्यक्ति का विरोधी है। वह साहित्य के जीवंत विकास के लिए परंपरा का योग स्वीकार करते थे,

---

* सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, डॉ. सी. वी रामन. विश्वविद्यालय, करगीरोड कोटा, बिलासपुर (छ.ग.), मो. – 8817336730ए

Email ID : shahidhussain2031@gmail.com

जिसके कारण साहित्य में आत्मनिष्ठ तत्व नियंत्रित हो जाता है और वस्तुनिष्ठ प्रमुख हो जाता है। कवि अपनी तीव्र संवेदना और ग्रहण क्षमता से अन्य लोगों की अनुभूतियों को आयत कर लेता है, पर वह आयत अनुभूतियाँ उसकी निजी अनुभूतियाँ हो जाती है। जब वह अपने चिंतन द्वारा आयत अनुभूतियों को काव्य में व्यक्त करता है, तो वे निजी अनुभूति होते हुए भी सब की अनुभूति बन जाती है। इलियट ने वस्तुनिष्ठ साहित्य को महत्व दिया तथा कला को निर्वैयक्तिक घोषित किया। इलियट निर्वैयक्तिकता के दो रूप मानते हैं– (1) प्राकृतिक– जो कुशल शिल्पी के लिए होता है। (2) विशिष्ट– जो प्रौढ़ कलाकार के द्वारा अधिकाधिक उपलब्ध की जाती है।

इलियट ने कहा है कि अच्छा रचनाकार कविता में अत्यंत संयमित आत्माभिव्यक्ति करता है। जिस प्रकार सल्फ्यूरिक अम्ल से भरे बर्तन में प्लैटिनम की उपस्थिति से सल्फर डाइऑक्साइड का निर्माण होता है, वैसे ही कवि की उपस्थिति कविता के लिए जरूरी होती है।

टी. एस. इलियट का वस्तुनिष्ठ समीकरण सिद्धांत

वस्तुनिष्ठ का अर्थ है– ''विचारों और खयालों को यथार्थ रूप में अभिव्यक्त करना।'' सहसंबंध का अर्थ है– ''दो या दो से अधिक चीजों के बीच एक पारस्परिक बंधन या संबंध।'' इलियट के वस्तुनिष्ठ समीकरण के सिद्धांत को निम्न बिन्दुओं के माध्यम से समझा जा सकता है –

1. भाव संप्रेषण के लिए वस्तुनिष्ठ सहसंबंध आवश्यक है।

2. ''कवि मन के भाव अमूर्त होते हैं'', अतः इन्हें किसी मूर्त वस्तु की सहायता से अभिव्यक्त किया जा सकता है। कवि को अपने भावों के मूर्तिकरण के प्रति सजग रहना चाहिए।

3. अभिव्यंग्य और अभिव्यंजक वस्तु में संबंध– अमूर्त भावों को व्यक्त करने के लिए उसका संबंध किसी भी मनचाही वस्तु के साथ नहीं जोड़ा जा सकता है। अभिव्यंग्य और अभिव्यंजक वस्तु में ऐसा संबंध होना चाहिए, जो उस भाव को यथार्थ रूप में अभिव्यक्त कर सके।

4. विभावों का चयन इस रूप में किया जाए कि सहृदय सामाजिक के चित्त में नाटककार के मनोभाव जागृत हो जाए।

5. मूर्त विधान का कोई निश्चित रूप या प्रकार नहीं– मूर्त विधान

कभी वस्तु समुदाय हो सकता है, कभी कोई परिस्थिति हो सकती है या फिर कोई घटना–श्रृंखला भी हो सकती है। अमूर्त भावों, संवेगों, विचारों और अनुभूतियों के संप्रेषण हेतु कवि को ऐसी घटनाओं का विन्यास करना चाहिए, जिससे उसके भाव प्रेषित होकर श्रोता या पाठक के हृदय में उसी भाव को जागृत कर सके।

6. बाह्य वस्तुओं के माध्यम से कवि और पाठक के बीच में भाव तादात्म्य– वस्तुनिष्ठ समीकरण का अवलंबन करने से अमूर्त भावों को स्पष्ट करने के लिए बाह्य वस्तुओं की सहायता से पाठक के मन में भी वैसे ही भाव उत्पन्न होते हैं, जैसे कवि के मन में उत्पन्न हुए थे। बाह्य वस्तुओं के माध्यम से कवि और पाठक के बीच में भाव तादात्म्य स्थापित हो जाता है और कवि तथा पाठक समान भाव भूमि पर आ मिल जाते हैं। इस प्रकार भाव का संप्रेषण सफलतापूर्वक हो जाता है। कवि अपनी संवेदनाओं और अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए मूर्त विधान से काम लेकर अमूर्त को मूर्त कर देता है। अतः कवि के मन के भावों की तरंग प्रतीकों द्वारा पाठक या श्रोता के मन को झंकृत कर देती है। काव्य की सार्थकता इसी में है कि भावनाओं और उनके मूर्त विधान में पूर्ण सामंजस्य एवं एकरूपता हो ।

संवेदनशीलता का असाहचर्य

टी. एस. इलियट का जन्म अमेरिका में हुआ था। उनका पूरा नाम थॉमस स्टीयर्न्स इलियट था। अंग्रेजी भाषा के कवि या नाटककार अधिकतर सिद्धांतकार और समालोचक होते थे। उनका जन्म सन 1888 में हुआ था और उनकी मृत्यु सन 1965 में हुई थी। इलियट की समालोचनात्मक रचनाएँ उनके निबंधों और भाषणों के संकलन हैं। अंग्रेजी आलोचना में इलियट के समय में अनेक नवीन धाराओं का उन्मेष हुआ। इलियट ने नवीन आलोचना को पर्याप्त मात्रा में प्रभावित किया। उन अंग्रेजी साहित्यों में 19वीं शताब्दी तक मानवतावादी एवं रोमानी भावनाओं और अवधारणाओं का पर्याप्त प्रचलन हुआ। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में इन दोनों का विरोध शुरू हो गया था। इलियट ने जब आलोचना जगत में पदार्पण किया, तब इस विरोध को अधिक गति मिली और 'संवेदनशीलता का असाहचर्य' शब्द अथवा इस शब्द का भाव अस्तित्व में आया। संवेदन और संवेदना का अर्थ है– अनुभूति। संवेदनशीलता का असाहचर्य का अर्थ हुआ– अनुभूति का सहचर ना होना,

अनुभूति का साथ ना देना। संवेदनशीलता का असाहचर्य अथवा अनुभूति का साथ ना देने की बात मानवतावादी एवं रोमानी भावना के ही प्रसंग में आई। मानवतावादी और रोमानी साहित्य में कवि का व्यक्तित्व प्रधान रहता था; अन्य वस्तु अथवा विषय नहीं, वर्ण्य–वस्तु अथवा विषय नहीं। इसी को संवेदनशीलता का असचार्य कहा गया। जिन लोगों ने मानवतावाद और रोमांस का विरोध किया, उनका कहना था कि कवि और आलोचक को अपनी संवेदना और संवेदनशीलता का सहचर नहीं होना चाहिए; उसे वर्ण्य–वस्तु पर ध्यान देना चाहिए, उसे वस्तुनिष्ठता का सहचर होना चाहिए। आलोचना के विषय में भी यही बात है। आलोचक को किसी रचना के विषय में यह स्पष्ट करने के स्थान पर कि अमुक रचना अथवा पुस्तक उसको कैसी लगी, उसे यह व्यक्त करना चाहिए कि यह रचना अथवा पुस्तक शास्त्रीय दृष्टि से कैसी है ?

टी. एस. इलियट पर अपने समय के दो आलोचकों एजरा पाउंड और टीवी रूम का बहुत प्रभाव है। इन दोनों ने भी प्रकारांतर से अथवा दूसरे शब्दों के माध्यम से संवेदनशीलता के साहचर्य का विरोध किया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. मैथिली प्रसाद भारद्वाज, पाश्चात्य काव्य शास्त्र के सिद्धान्त।
2. शांति स्वरूप गुप्त, पाश्चात्य काव्य शास्त्र के सिद्धान्त।
3. कृष्णदेव शर्मा, पाश्चात्य काव्य शास्त्र के सिद्धान्त।
4. डॉ. विवेक शंकर, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र।
5. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र, भारतीय विद्या संस्थान, वाराणसी।

■■

(9)

आई. ए. रिचर्ड्स : रागात्मक अर्थ, संवेगों का संतुलन, व्यावहारिक आलोचना

सपना पाटले

आई ए. रिचर्ड्स (इवोर आर्मस्ट्रांग रिचर्डस) का जन्म 26 फरवरी 1893 को सनडबाच चेशायर इग्लैंड में हुआ था। उच्च शिक्षा मगडालेन कालेज कैम्ब्रिज से प्राप्त करते हुए आप अर्थशास्त्र एवं मनोविज्ञान के अध्येता रहे। आवकी जीवनसाथी ड्रोथी पिल्ले रिचर्डस रही हैं। इनका रचनाकाल सन् 1924 से 1936 के मध्य माना जाता है। रिचर्ड्स हावर्ड विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के प्रोफेसर रहे। एक दर्जन ग्रंथों में से 'प्रिंसिपल आफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म' सबसे अधिक प्रसिद्व है। वे अंग्रेजी के प्रभावशाली समालोचक तथा वक्ता थे। आपकी मृत्यु 07 सितम्बर 1979 (उम्र– 86 वर्ष) को कैम्ब्रिज इग्लैंड में हुई।

प्रमुख रचनाएँ

1. द फाउंडेसन आफ एसथेटिक्स (1922)– यह रचना सी. के. ऑक्डेन और जेम्स वुड के साथ मिलकर लिखी गई है।
2. मीनिंग आफ मीनिंग (अर्थ का अर्थ) (1923)– यह रचना भी सी. के. ऑक्डेन के साथ मिलकर लिखी गई है।
3. प्रिंसिपल आफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म (साहित्य आलोचना) (1924)।

---

* जन्म तिथि : 10 अक्टूबर 1981, पति : श्री महेन्द्र कुमार पाटले, योग्यता : एम. ए. (हिन्दी, संस्कृत), डी.एड्., सम्प्रति : शिक्षक, शासकीय पोस्ट मैट्रिक अनुसूचित जन जाति कन्या छात्रावास खरसिया, मो0 नं0 : 7974068172,
मेल : sapnapatley1981@gmail.com

4. साइन्स एंड पोयट्री (विज्ञान और कविता) (1925)।
5. प्रैक्टिकल क्रिटिसिज्म (व्यवहारिक आलोचना) (1929)।
6. कॉलरिज आन इमैजिनेशन (कॉलरेज की कल्पना शक्ति) (1935)।
7. द फिलॉसफी ऑफ रिटोरिक (शब्दता का दर्शन) (1936)।

प्रमुख सिद्धान्त

आई ए. रिचर्ड्स के दो सिद्धांत विशेष उल्लेखनीय हैं।

1. सम्प्रेषण सिद्धांत (theory of communication),
2. मूल्य सिद्धांत (theory of value)।

(1) सम्प्रेषण सिद्धांत (theory of communication)–

सम्प्रेषण सिद्धांत को सम्प्रेषणीयता का सिद्धांत भी कहा जाता है। रिचर्ड्स का मानना है कि किसी अन्य व्यक्ति की अनुभूति को मूलभूत रूप में आत्मसात् करना ही प्रेषणीयता है। विषय की रोचकता व रमणीयता से संप्रेषण में पूर्णता का समावेश होता है। कवि जब तक स्वयं अपनी अनुभूतियों के साथ एक रस नहीं हो जाता, तब तक वह अनुभूति–प्रेषणीयता का गुण ग्रहण नहीं कर सकता।

संप्रेषण एक स्वाभाविक व्यापार है, जिसमें निश्चय ही कवि–प्रतिभा स्वतः अज्ञात रूप से कार्य करती है। अनुभूतियों का सहज प्रस्तुतीकरण उस प्रभावदशा का निर्माण कर देता है, जो कवि ने अनुभूति की थी। संप्रेषण की प्रक्रिया में भाषा का विशेष योगदान है। शब्दों के अर्थ, बोध एवं बिम्ब ग्रहण से काव्यार्थ का बोध होता है। इस बोध से ही भावों एवं भावात्मक दृष्टि की अनुभूति होती है।

रिचर्ड्स का विचार है कि संप्रेषण कला का तात्विक धर्म है। एक कलाकार का अनुभव विशिष्ट और नया होने के कारण उसकी सम्प्रेषयीता समाज के लिए मूल्यवान है। रचना में जितनी प्रबल और प्रभावशाली सम्प्रेषणयीता होती है, उतना ही बड़ा कवि या कलाकार होता है।

रिचर्ड्स के अनुसार प्रेषणीयता को प्रभावी बनाने के लिए निम्न बातें आवश्यक हैं–

1. कवि या कलाकार की अनुभूति व्यापक और प्रभावशाली होनी चाहिए।
2. अनुभूति के क्षणों में आवेगों का व्यवस्थित ढंग से संतुलन होना

चाहिए।

3. वस्तु या स्थिति के पूर्ण बोध के लिए कवि में जागरूक निरीक्षण शक्ति होनी चाहिए।
4. कवि के अनुभव और सामाजिक अनुभवों में तालमेल होना चाहिए। यदि दोनों में अन्तर हो, तो कल्पना की सहायता सं भावों व विचारों का संप्रेषण होना चाहिए।

रिचर्ड्स भाषा की दो श्रेणियाँ स्वीकार करते हैं– वैज्ञानिक भाषा तथा रागात्मक भाषा। वैज्ञानिक भाषा में सूचनात्मक, तथ्यात्मक अथवा अभिधात्मक भाषा का प्रयोग होता है; जबकि काव्य की भाषा रागात्मक होती है। काव्य की भाषा में भावात्मक अर्थ की प्रधानता होती है।

(2) मूल्य सिद्धांत (theory of value)

रिचर्ड्स ने इस बात पर विशेष बल दिया है कि सौन्दर्य, कला तथा जीवन का निकटतम संबंध है। इसी आधार पर उन्होंने प्रमुख सिद्धांतों की स्थापना की है। उन्होंने आलोचना के दो आधार स्तम्भ माने हैं– मूल्य का लेखा तथा सम्प्रेषण का लेखा। जहाँ तक मूल्य की सामान्य परिभाषा का प्रश्न उठता है, मूल्य किसी वस्तु का वह धर्म (गुण) है, जिसमें उसका परिरासन अथवा रूचि निहित हो।

मूल्य सिद्धांत को कला का मल्यवादी सिद्धांत या उपयोगितावादी सिद्धांत भी कहा जाता है। रिचर्ड्स ने ब्रेडले के 'कला कला के लिए है' सिद्धांत का खण्डन करते हुए कला व नीति का परस्पर संबंध स्वीकार किया है। रिचर्ड्स कहते हैं कि एक श्रेष्ठ कला वह है, जो मानव सुख की अभिवृद्धि में संलग्न हो, पीड़ितों के उद्धार या हमारी पारस्परिक सहानुभूति के विस्तार से जुडी हुई हो, जो हमारे नूतन और पुरातन सत्य का आख्यान करे, जिससे इस भूमि पर हमारी स्थिति और अधिक सुदृढ़ हो, तभी वह महान कला होगी। रिचर्ड्स का विचार है कि सृजन के क्षणों में कलाकार सर्वोत्तम स्थिति में होता है। काव्य की उपयोगिता भी यही है कि पाठक भी उस मानसिक स्थिति के निकट पहुचे। रिचर्ड्स ने इसे ही काव्य का मूल्यवान रूप माना है और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे ही 'हृदय की रसदशा' कहा है।

आई ए. रिचर्ड्स के काव्य सिद्वांत का अध्ययन करने से हम पाते हैं कि काव्य के संप्रेषण का मुख्य माध्यम भाषा ही है। रिचर्ड्स का भाषा

संबंधी चिंतन महत्वपूर्ण है। उसने प्रयोग की दृष्टि से भाषा के दो वर्ग माने हैं– (1) तथ्यात्मक प्रयोग– इसका प्रयोग वैज्ञानिक और दार्शनिक करते हैं। (2) रागात्मक प्रयोग– रचनाकार भाषा के रागात्मक वर्ग का प्रयोग करते हैं।

रागात्मक अर्थ

रागात्मक वर्ग की भाषा में प्रतीकों, बिंबों और भाव–संकेतों को विशेष महत्व दिया जाता है। यही भाषा कवियों और रचनाकारों की अनुभूति को संप्रेषित करने मे समर्थ होती है।

शब्द और अर्थ के संबंधों पर गहराई से विचार करते हुए रिचर्ड्स ने चार प्रकार के अर्थों का उल्लेख किया है– 1. वाच्यार्थ या अभिधार्थ (Sence) 2. भाव (Feeling), 3. वक्ता की वाणीगत चेष्टा (Tone) और 4. अभिप्राय (Intention)।

रिचर्ड्स के अनुसार समृद्ध और समर्थ भाषा में उपर्युक्त चारों अर्थ छाया होती हैं। समर्थ रचनाकार की भाषा मे उपर्युक्त सभी विशेषताएं होती हैं। भाषा में सामान्यतः उपर्युक्त चारों प्रकार के अर्थ सूचित होते हैं, किन्तु विषय और परिस्थिति के भेद में इनका अनुपात बदलता रहता है। विज्ञान की पुस्तकों में वाच्यार्थ का अधिक प्रयाग होता है। रिचर्ड्स के अनुसार, सेन्स या वाच्यार्थ में किसी वस्तु विशेष या किसी विधेय को शब्दों के द्वारा सूचित किया जाता है।

विज्ञान की पुस्तकों में वाच्यार्थ, जबकि काव्य में भाव की अतिशयता होती है; फिर भी ये अर्थ परस्पर सर्वथा असंबद्ध नही है, वे एक दूसरे से जुड़े हुए होते हैं। काव्य में भाव या भावार्थ की इतनी अधिक महत्ता होती है कि वहाँ वाच्यार्थ या मूल्य तथ्य गौण हो जाते हैं। यहाँ तथ्य साधन होते हैं साध्य नहीं। अतः जो लोग केवल तथ्यों अथवा विचारों के आधार पर ही कविता का मूल्यांकन करते हैं, वे काव्य के साथ न्याय नही करते। भाषा का प्रयोग भाव की प्रेरणा से होती है (गणित जैसे कुछ विषयों को अपवाद स्वरूप छोड़कर)। कविता विचारों की अभिव्यक्ति के लिए नहीं, अपितु भावों के प्रभाव के लिए होती है। अर्थ और भाव के पारस्परिक संबंध को स्पष्ट करते हुए रिचर्ड्स ने उसके तीन रूप स्वीकार किए हैं– (1) जहाँ अर्थ ही भाव का बोधक हो, (2) जहाँ अर्थ भाव की अनुभूति का सूचक हो तथा (3) जहाँ

प्रसंग विशेष के कारण अर्थ विभिन्न भावों का सूचक हो।

टोन या लहजे के द्वारा वाचक का श्रोता के प्रति दृष्टिकोण व्यक्त होता है। क्रोध और प्रेम की दशा में हमारा टोन अलग–अलग होता है।

समान्यतः कोई भी व्यक्ति किसी प्रयोजन से ही कुछ कहता है। अतः अभिप्राय का भाषा से महत्वपूर्ण संबंध है।

गणपतिचन्द्र गुप्त के अनुसार, भाषा के चारों भेदों का विभाजन वैज्ञानिक एवं सुसंगत नहीं है। सही बात तो यह है कि रिचर्डस के भाव, लहजा और अभिप्राय; अर्थ के तीन भेद न होकर एक दूसरे के अंग हैं। अर्थों के इस वर्गीकरण की अपेक्षा भारतीय आचार्यों द्वारा किए गए शब्द शक्ति के भेद अमिधा, लक्ष्णा और व्यंजना अधिक वैज्ञानिक एवं तर्क संकत है।

संवेगों का संतुलन

आई ए. रिचर्ड्स का आधुनिक युग में गौरवपूर्ण स्थान है। मुख्य रूप से उनका महत्व इस बात में है कि उन्होंने कला के निरपेक्ष संसार पर आस्था रखने वाली, युग की विविध समीक्षा–पद्धतियों का उचित खण्डन करके आलोचना को वैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठित किया। साथ ही, मनोविज्ञान के आधार पर काव्य के भाव पक्ष की व्याख्या करते हुए काव्य के मनोवैज्ञानिक मूल्य का सिद्धांत प्रस्तुत किया।

रिचर्ड्स मनोविज्ञान के क्षेत्र से साहित्य जगत मे आए। उन्होंने सर्वप्रथम मनोवैज्ञानिक विवेचना का आश्रय लेकर काव्य–मूल्य के निर्धारण का प्रयत्न किया। इस संदर्भ में उन्होंने मानव के मानसिक संवेगों (उद्वेगों) की चर्चा की। इसी को रागात्मक भी कह सकते हैं। उनका विचार था कि मनुष्य के लिए वही वस्तु मूल्यवान होती है, जो उसके मानसिक संवेगों को शान्त करती है। जो वस्तुएँ मानव के संवेगों (उद्वेगों) को शान्त करने में असमर्थ होती हैं, वह उनकी दृष्टि में महत्वहीन होती हैं। रिचर्ड्स के अनुसार संवेगों (मनोवेगों) की दो कोटियाँ हैं–

(1) प्रवृत्तिमूलक अनुकूल आकांक्षाएँ (एषणाएँ),

(2) निवृत्तिमूलक प्रतिकूल एषणाएँ (आकांक्षाएँ)।

प्रवृत्तिमूलक संवेगों में प्रेम, भूख, तृष्णा, वासना आदि एषणाएँ समाहित की जा सकती हैं तथा निवृत्तिमूलक संवेगों में मन की विरक्ति, घृणा, निर्वेद

आदि इच्छाएँ आ जाती हैं। इन दोनों को क्रमशः तृष्णामूलक तथा वितृष्णामूलक उद्वेगों की भी संज्ञा दी गई है। कभी एक उद्वेग शान्त हो जाता है, तब उसके स्थान पर दूसरा जाग्रत हो जाता है।

राग शब्द का अर्थ है– मन का झुकाव या आसक्ति। अन्य शब्दों में प्रिय या अभिप्रित वस्तु के प्रति मन मे होने वाला भाव राग है। ईर्ष्या, द्वेष, मत्सर, प्रेम, अनुराग आदि सभी इसके पर्यायवाची शब्द कहे जा सकते हैं। मानव मन में परिस्थितियों के अनुसार अनेक प्रकार के राग या भाव उत्पन्न होते रहते हैं। इन्हीं रागों या भाव व्यवस्था के कारण मानव मन चिन्तित एवं व्यथित रहता है। आई. ए. रिचर्ड्स के मतानुसार, इन्हीं राग जनित संवेगों में सन्तुलन स्थापित करना ही कविता का उद्देश्य होना चाहिए।

रिचर्ड्स के अनुसार, काव्य–मूल्य पाठक के मन को प्रभावित करने वाली क्षमता पर आश्रित है। जो कविता पाठक को जितना अधिक प्रभावित कर पायगी, जिसमें अपेक्षाकृत जितनी अधिक सम्प्रेणीयता होगी, वह उतनी ही श्रेष्ठ कही जाएगी। काव्य का प्रयोजन यही है कि वह मानव मन के रागात्मक पक्ष को व्यवस्थित करे, सन्तुलित करे। यदि वह ऐसा नहीं कर पाता है, तो वह काव्य निरर्थक है, उसका कोई महत्व नहीं है। रिचर्ड्स का कहना है कि मानव मन असंख्य संवेगों (आवेगों) का तंत्र है। जब इन आवेगों (impulses) में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है, तो उनका समतोलन भंग हो जाता है। समतोलन लाने के लिए यह जरूरी है कि मन के संवेग व्यवस्थित होकर एक स्वर (एक रूप) हो जाएँ। मानव मन में यह असमतोलन एवं समतोलन बराबर होता रहता है। विभिन्न प्रकार के राग मानव मन को प्रताड़ित करते रहते हैं। घर–परिवार, समाज, धर्म आदि के कारण मानसिक अव्यवस्था उत्पन्न होती रहती है। काव्य/कला का यही उद्देश्य है कि इन संवेगों मे संतुलन स्थापित करे। वह पाठक या श्रोता के संवेगों को इस प्रकार से व्यवस्थित कर दे कि उसे विश्रांति की प्राप्ति हो। एक स्थल पर वे कहते हैं कि काव्य ऐसी अनुभूति का संचरण करने मे सफल हो, जो परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों (संवेगों) के बीच सामंजस्य ले आए।

प्रमुख एवं गौण संवेग–

रिचर्ड्स का कहना है कि प्रवृत्तिमूलक और निवृत्तिमूलक उद्वेगों मे परस्पर संघर्ष भी हो जाता है। कभी–कभी ऐसा भी हो जाता है कि हमारे

एक उद्वेग की तो सन्तुष्टि हो जाती है। परन्तु साथ ही दूसरे प्रकार के उद्वेग को चोट पहुँचती है। उदाहरण के रूप में हम अपनी उदारता के कारण अपमान करने वाले किसी व्यक्ति को क्षमा तो कर देते हैं, लेकिन मन में यह दुख तो बना रहता है कि इसने हमारा अपमान किया। यह स्थिति परस्पर विरोधी उद्वेगों का संघर्ष कहलाती है। इसका एक मात्र उपाय यही है कि हम अपने उद्वेग को इस प्रकार से शान्त करें, जिससे कि दूसरे प्रकार के उद्वेग को चोट न पहुँचे या हल्की चोट पहुँचे। यह तभी संभव होगा जब हम प्रमुख उद्वेगों को महत्व देंगे और गौण उद्वेगों की ओर घ्यान नहीं देंगे। इस संबंध में रिचर्ड्स स्वयं कहते हैं, ''यदि हमारी किसी मांग (उद्वेग) की सन्तुष्टि न होने पर हमारी अन्य कई मांगें विक्षुब्ध हो उठती हैं, तो हमारी ये मांगें महत्वपूर्ण हैं।'' पुनः रिचर्ड्स का कथन है कि इन्हीं उद्वेगों के आधार पर हमारे सामाजिक तथा नैतिक नियमों का निर्धारण किया जाता है। सुचारू और शान्तिपूर्वक सामाजिक व्यवस्था के लिए यह नियम बनाया गया है कि समाज के लिए वही वस्तु अधिक उपयोगी है, जो समाज के अधिकांश व्यक्तियों की मांगो को बिना किसी पारस्परिक संघर्ष के अधिकाधिक मात्रा में सन्तुष्ट करने में समर्थ हो। रिचर्ड्स ने मूल्य संबंधी इसी सिद्धांत को काव्य और समीक्षा पर लागू किया।

कवि या कलाकार का लक्ष्य–

रिचर्ड्स के अनुसार, कवि या कलाकार सामान्य की अपेक्षा अधिक प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति होता है। वह अपनी प्रतिभा और कल्पना की सहायता से मानव के परस्पर विरोधी उद्वेगों में स्थायी सन्तुलन प्रदान करता है। साधारण व्यक्ति ऐसा नहीं कर पाता। उदाहरण के रूप में, कलाकार अपनी विलक्षण प्रतिभा द्वारा करूणा और भय जैसे परस्पर विरोधी उद्वेगों का समन्वय करके त्रासदी की रचना कर देता है। रिचर्ड्स के अनुसार कलाकार का काम है– उन अनुभूतियों को अंकित करना और चिर स्थायी बना देना, जिसे वह सबसे अधिक मूल्यवान समझता है। काव्य और कला का प्रयोजन यही है कि आवेगों में सन्तुलन स्थापित कर मन में समस्वर की अवस्था उत्पन्न करे और आवेगों को व्यवस्थित कर दे। रिचर्ड्स के अनुसार, सौन्दर्य एक प्रकार का मूल्य है। वह उसे निरपेक्ष मूल्य कहता है। सौन्दर्य इसलिए मूल्यवान है क्योंकि उसमें विरोधी मनोवेगों में व्यवस्था और सन्तुलन उत्पन्न

हो जाता है। मानव मन में जो लगातार उद्वेग उत्पन्न होते रहते हैं, उनमें से कुछ अनुकूल होते हैं और कुछ प्रतिकूल होते हैं। सौन्दर्य अर्थात ऐस्थेटिक्स के प्रभाव से इन संवेगों में एक प्रकार के पारस्परिक सामंजस्य स्थापित होता है। सौन्दर्य से उत्पन्न यह आनन्दप्रद मनोदशा न निष्क्रिय अवस्था में होती है, जिसमें समान विरोधी प्रभावों के आकर्षण के कारण हम स्तब्ध और किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं, और न उत्तेजना पूर्ण दृढ़ता को प्राप्त होते हैं, जो क्रोध आदि को जन्म देती है।

पुनः प्रवृत्तिमूलक और निवृत्तिमूलक उद्वेगों की चर्चा करते हुए रिचर्ड्स कहते हैं, ''मन की सबसे मूल्यवान स्थिति वह है, जिसमें मानवीय क्रियाओं की सर्वाधिक और सर्वोत्कृष्ट संगति स्थापित होती है, जिसमें उद्वेगों में पारस्परिक स्पर्धा घट जाती है। अतः कला और साहित्य का मूल्य इसी बात में है कि वह हमारे आवेगों में संगति और सन्तुलन स्थापित करे, हमारी अनुभूतियों के क्षेत्र को व्यापक बनाए। सच्चा साहित्य यही कार्य करता है।''

संक्षेप में रिचर्ड्स के अनुसार–

(क) साहित्य अथवा कला अन्य मानव व्यापारों से सम्बद्ध है। उससे पृथक् अथवा भिन्न नहीं है।

(ख) मानव की कलाओं में काव्य–कला सर्वाधिक मूल्यवान है।

(ग) मानव की किसी भी क्रिया का मूल्य इस बात से निर्धारित हेाता है कि वह कहाँ तक उसके मनोवेगों में सन्तुलन और सुव्यवस्था उत्पन्न करने में सक्षम है।

(घ) कला के द्वारा घटित आवेगों का सन्तुलन कला के आस्वाद के क्षणों तक ही सीमित नहीं रहता।

(ड.) बीसवीं शताब्दी में जब विज्ञान की प्रगति के कारण मानव का जीवन जटिल और दुरूह बनता जा रहा था, उस स्थिति में रिचर्ड्स का मूल्य सम्बन्धी विचार काफी उपयोगी और प्रभावशाली हुए।

मूल्यांकन–

रिचर्ड्स के विचार मौलिक और चमत्कारपूर्ण है। उन्होंने पहली बार अंग्रेजी साहित्य में व्यापक और व्यवस्थित सौन्दर्यशास्त्र के निर्माण का

सराहनीय प्रयास किया है। उन्होंने आलोचना का एक पूर्ण और स्वतंत्र शास्त्र प्रस्तुत किया। इसके लिए उन्होंने मनोविज्ञान को अपनी आलोचना–पद्धति का आधार बनाया है, साथ ही मानव–विज्ञान, अर्थ–विज्ञान जैसे नव विकसित विज्ञानों का भी उपयोग किया है।

रिचर्ड्स के मूल्य सिद्धान्त के केन्द्र में व्यक्ति है, समाज नहीं; क्योंकि मनोविज्ञान की जिन शाखाओं पर उनकी आलोचना–पद्धति आश्रित है, वे व्यक्ति मूलक हैं। इसलिए अपनी समग्र मीमांसा के मूल में, चाहे वह मूल्य की मीमांसा हो या नैतिकता की, व्यक्ति को ही रखा है। उन्होंने आर्नाल्ड की तरह समाज और संस्कृति की बात कभी–कभी उठाई है, परन्तु उसका पल्लवन नहीं किया। मूल्य और सम्प्रेषण का सम्बन्ध भाषा से है। इसी कारण उनकी आलोचना–पद्धति मनोवैज्ञानिक या अर्थवैज्ञानिक कही जाती है।

रिचर्ड्स काव्य के प्रयोजन में आनन्द को स्थान नहीं देते, अपितु उसके स्थान पर काव्य का एक मात्र प्रयोजन आवेगों की संतुष्टि विश्रान्ति की उपलब्धि में मानते हैं।

व्यावहारिक आलोचना

व्यावहारिक आलोचना किसी सिद्धान्त पर आधारित नहीं रहती, फिर भी उसका उद्देश्य किसी भी कृति के सौन्दर्य और विशेषताओं को स्पष्ट कर अनुभूतिगम्य बनाता है। इस दृष्टि से आलोचना के अनेक स्वरूप विकसित हुए, पर कोई एक इस उद्देश्य की पूर्णतया पूर्ति न कर सका। अतएव व्यावहारिक समीक्षा की आवश्यकता का अनुभव हुआ।

व्यावहारिक समीक्षा के सिद्धान्त या नियम, अनुसंधान की पूर्वगामिनी आलोचना की एक सामान्य प्रक्रिया है, जो उसको समुचित दृष्टि प्रदान करता है। इस प्रक्रिया को व्यवहार में लाने वाले अंग्रेजी के प्रसिद्ध समालोचक और विद्वान आई. ए. रिचर्ड्स हैं। उन्होंने अपने ग्रन्थ 'प्रैक्टिकल क्रिटिसिज्म' में इस प्रक्रिया को स्पष्ट किया है और निष्कर्षस्वरूप अपने विचार प्रस्तुत किए हैं।

रिचर्डस ने प्रैक्टिकल क्रिटिसिज्म में अर्थ के चार प्रकार गिनाएँ हैं–

1. वाच्यार्थ (सेन्स) : यह वस्तु स्थिति से परिचित कराने वाली शक्ति है।

2. भाव (फिलिंग) : यह वक्ता की भावना है, जो शब्दों के प्रयोग से व्यक्त करना चाहता है।
3. स्वर/लहजा (टोन) : टोन के माध्यम से लेखक का श्रोता या पाठक के प्रति दृष्टिकोण प्रकट होता है।
4. अभिप्राय (इंटेशन) : इसके द्वारा वक्ता/लेखक अपना अभिप्राय व्यक्त करता है।

रिचर्ड्स ने अनेक अंग्रेजी कविताओं को अपने शीर्षकों और लेखकों के नामों को हटाकर विभिन्न प्रकार के शिक्षा–स्तर के शिक्षित व्यक्तियों को स्वतंत्र समालोचनार्थ भेजा और उनकी समालोचनाएँ प्राप्त होने पर, उनका विश्लेषण अपनी पुस्तक में प्रस्तुत किया है। इसी के आधार पर उन्होंने समीक्षा की और कुछ विशिष्ट बातों और नियमों का संग्रह किया है। इसके पूर्व कि हम उन नियमों पर विचार करें, हमें पहले इस प्रयोग की महत्ता पर विचार कर लेना चाहिए। रिचर्ड्स का उद्देश्य केवल साहित्यक समीक्षा पर प्रयोग करना नहीं था, वरन् संस्कृति की समकालीन स्थिति और शिक्षा–पद्धति का नवीन मार्ग भी स्पष्ट करना था। आत्मविश्लेषण और शिक्षा पद्धति के साथ–साथ इस प्रयोग का सबसे बड़ा महत्व सांस्कृतिक और ऐतिहासिक भी है। यदि इस प्रकार की व्यावहारिक समीक्षा के प्रयोग चलते रहे और विभिन्न देशों में एक ही समय चले, तो निश्चय ही हमें इनके द्वारा संस्कृति और साहित्यिक अभिरूचि का तुलनात्मक यथार्थ ज्ञान हो सकता है। इस दृष्टि से सचमुच इसका बहुत महत्व है।

व्यावहारिक समीक्षा संबंधी प्रयोगों से यह बात स्पष्ट होती है कि भावों या विचारों का सहज और सरल प्रयास कितना कठिन है, साथ में यह निष्कर्ष भी निकाला जा सकता है कि समीक्षा का प्रयास भी भावों और विचारों के आदान–प्रदान की सहजतम रीति निकालना है। समीक्षा संबंधी अनेक सिद्धांत इसी के परिणाम है। परन्तु वास्तविकता तो कुछ इस प्रकार की है कि वे सिद्धांत या नियम बुद्विमानों के लिए बड़े सहायक सिद्ध होते हैं और अन्य के लिए वे स्वयं एक भ्रम या उलझन डालने वाली वस्तु बन जाते हैं। मनुष्य की विभिन्न अभिरूचियों और विभिन्न मनोवृत्तियों के परिणामस्वरूप तथा विभिन्न युगों की जीवन–शैली और आदर्शों की परिवर्तनशीलता और विकास के कारण कोई भी नियम या सिद्धांत सर्वांगीण

रूप से उपयोगी सिद्ध नही हो पाता। इसके अतिरिक्त सिद्धांत–विशेष का आग्रह, समीक्षा को अपनी सीमा में बांधने वाला भी होता है और उसके स्वच्छन्द विकास में बाधा पहुँचाता है, अतः उसके स्वच्छन्द और विकासशील रूप को प्रेरणा देने का प्रयत्न ही श्रेयस्कर है। इस प्रकार व्यावहारिक समीक्षा के मार्ग में कठिनाईयाँ उपस्थित होती हैं। इन कठिनाईयों में से कुछ प्रमुख यहाँ विचारणीय हैं–

1. कविता के वास्तविक अर्थ–ग्रहण की कठिनाई– किसी भी छन्द का यथार्थ तात्पर्य ग्रहण करना अत्यावश्यक है, क्योंकि अन्य बातें इसी पर निर्भर करती हैं। यह बात आश्चर्यकारी है, परन्तु व्यावहारिक समीक्षा के प्रयासस्वरूप जो निष्कर्ष निकला, वह सही था कि अधिकांश व्यक्ति कविता का अर्थ और सहज तात्पर्य नही समझ पाते और इसके परिणामस्वरूप उसमें व्यक्त भावानुभूति ध्वनि एवं उद्देश्यों को समझने में भी भ्रम कर बैठते हैं। यह भाव सरल, जटिल और क्लिष्ट सभी प्रकार की कविताओं के लिए सत्य बैठता है। किसी भी समीक्षा के लिए काव्य का अर्थ–ज्ञान तो प्रारम्भिक आवश्यकता है।

2. कविता के ऐन्द्रिक प्रभाव के ग्रहण की कठिनाई– यह तो निर्विवाद तथ्य है कि कविता में शब्दक्रम गद्य के शब्दक्रम से भिन्न होता है और उसका एक लयात्मकता या ध्वन्यात्मकता प्रभाव होता है। इस प्रभाव को ग्रहण करने के लिए हमारी श्रवण–शक्ति की योग्यता आवश्यक है। लयात्मक प्रभाव को ग्रहण कर सकने वाली व्यक्तियों पर जो प्रभाव किसी छन्द का पड़ सकता है, वह अन्य पर नहीं। कवि भी तद्विषयक प्रतिभा और कविता के इस गुण की विशेषता नही जान सकते, यदि कवि में ये लयात्मक संस्कार नही है। इस त्रुटि का परिहार किन्हीं–किन्हीं अंशों में कवि द्वारा या किसी अन्य दक्ष व्यक्ति द्वारा लयात्मक ढंग से पढ़कर किया जा सकता है, परन्तु उसके भी समग्र प्रभाव का आनन्द लेने के लिए पाठक या समीक्षक को इस दृष्टि से संस्कृत होना आवश्यक है।

ऐन्द्रिक प्रभाव का दूसरा रूप है– दृश्य दर्शन। इसका संबंध कवि के प्रत्यक्ष करने की शक्ति है। कवि के भीतर प्रत्यक्षीकरण की शक्ति असाधारण रूप से विद्यमान होती है। वह प्रत्यक्षीकरण का वर्णन करता है, परन्तु प्रत्यक्ष करने का दृश्य–दर्शन की शक्ति सभी में बराबर या एक–सी नहीं होती।

इसके अतिरिक्त कभी–कभी ऐसा होता है कि संयोग से कवि उस भावना को प्रकट करता है, जो पाठक या समीक्षक की अपनी भावना भी है। ऐसी दशा में पाठक या समीक्षक उस भावना में इतने अभिभूत हो जाते हैं कि वह कवि की न रह कर पाठक या समीक्षक की हो जाती है। समीक्षा की दृष्टि से यह स्थिति भी आपत्तिपूर्ण है, क्योंकि या तो समीक्षक कवि के साथ पक्षपात करेंगे या उसे कोई श्रेय न देंगे।

3. भावुकता– समीक्षा के क्षेत्र में भावुकता एक बहुत बड़ी कठिनाई है। इस भावुकता के वशीभूत होकर निश्चय ही, या तो आलोचक कुछ ऐसी अच्छाइयॉ देखने लगते हैं या प्रसंग से पूर्णतया बहक जाते हैं। यहाँ पर यह बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि भावुक और भावक, सहृदय या समीक्षक में अन्तर है। वास्तविक गुणों का समुचित ग्रहण और प्रशंसा भावक या सहृदय का काम है, जबकि भावुक अवास्तविक या काल्पनिक गुणों की प्रशंसा करता है। उसकी अभिव्यक्ति सदैव समीक्षा नहीं कही जा सकती।

4. सैद्धांतिक आग्रह– एक और बहुत बड़ी कठिनाई है– सैद्धांतिक आग्रह। यह सैद्धांतिक आग्रह दो रूपों में देखा जा सकता है। प्रथम, इस रूप में कि कविता में सत्य या जीवन के संबंध में क्या विचार प्रकट किए गए हैं? यदि पाठक या समीक्षक किसी विशेष सम्प्रदाय, विचार या सिद्धांत का व्यक्ति है, तो उस काव्य खण्ड का मूल्यांकन उसके आधार पर करेगा। वह समर्थक होने पर उसकी प्रशंसा और न होने पर निंदा कर सकता है। अन्य सिद्धांत या विचारधारा के कारण उसे निकृष्ट बताया जा सकता है। दूसरा, समीक्षक के सामने एक और प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या काव्य का महत्व उसमें व्यक्त किसी विशिष्ट सिद्धांत या विचारधारा के कारण या इसके अतिरिक्त किसी अन्य बात के आधार पर प्रतिपादित होता है? यदि विचारधारा इस बात को इतना महत्व देती है तो वह कविता की शैली या शिल्प हो सकती है।

उपर्युक्त कुछ प्रमुख कठिनाईयॉ हैं, जो व्यावहारिक समीक्षा के क्षेत्र में उपस्थित होती हैं। इन बातों को सामने रखने पर पाते हैं कि मानव अभिव्यक्ति के चार पक्ष हैं– (1) अर्थ, (2) भावनुभूति, (3) ध्वनि और (4) उद्देश्य। कसी भी समीक्षक के लिए इन चारों पक्षों का समूचित ज्ञान अपेक्षित है। विभिन्न प्रकार की अभिव्यक्तियों के इन पक्षों में कमी या

अधिकता देखी जा सकती है। एक वैज्ञानिक कृति के लिए अर्थ ही सर्वोपरि महत्व का है। कृति की भावानुभूति का ध्वनि से कोई विशेष संबंध नहीं। हाँ, उद्देश्य अवश्य उसके अर्थ का पथ प्रदर्शन करता है। परन्तु एक साहित्यकार या वक्ता के लिए भावानुभूति का पक्ष महत्वपूर्ण है, जहाँ पर वह अपने वक्तव्य या भाषण का प्रभाव डालना चाहता है। भाव के विशिष्ट प्रभाव के लिए ध्वनि का अपना स्थान है, विशेष रूप से कविता की स्मरणीय रमणीयता के लिए ध्वनि का सहारा आवश्यक है।

उपदेशात्मक और सैद्धांतिक उक्तियों में उद्देश्य, प्रधान होता है। इन अभिव्यक्तियों की प्रकृति के अनुसार इन चार पक्षों के स्वरूपों का प्राधान्य है। इन पक्षों का संबंध काव्य के तत्वों से जोड़ा जा सकता है। काव्य भी एक विशिष्ट प्रकार की अभिव्यक्ति है, वरन् यह कहा जाय कि काव्य एक सजीव और पूर्ण अभिव्यक्ति है, तो असमीचीन न होगा। इस अभिव्यक्ति में शब्द, अर्थ, भाव, कल्पना और बुद्धि तत्वों का सामंजस्य और समन्वय रहता है। काव्य के अतिरिक्त अन्य उक्तियों में समस्त तत्व विद्यमान नहीं रहते। वैज्ञानिक उक्तियों में अर्थ और बुद्धि तत्व प्रधान हैं। दार्शनिक उक्तियों में अर्थ, बुद्धि तत्वों के साथ कभी–कभी कल्पना–तत्व का भी समावेश हो जाता है। शब्द तत्व केवल अर्थ–तत्व का वाहक हो कर आता है। उसका अपना पूर्ण स्वरूप प्रकट नहीं होता और उसकी ध्वनि–संबंधी विशेषता प्रस्फुटीत नहीं हो पाती। शास्त्रीय, धार्मिक और नैतिक उक्तियों में भी यही बात देखी जा सकती है। अतः वह काव्य उसके समक्ष ही कोई युक्ति है, जिसमें उन पांचों तत्वों का समुचित एवं सजीव प्रभावपूर्ण सम्मीश्रण देखा जा सकता है। इसलिए उक्तियों में सबसे महत्वपूर्ण काव्योक्ति मानी गई है। पूर्वोक्त चार पक्षों का समाहार भी इन पांचों तत्वों में हो जाता है।

■■

(10)

अभिजात्यवाद

डॉ. रमेश टण्डन

जो व्यक्ति एक अभिजात वर्ग बनाते हैं, उनसे जुड़ी धारणा या विश्वास ही अभिजात्यवाद की अवधारणा को पुष्ट करता है। आंतरिक गुण, उच्च बुद्धि, धन, शक्ति, विशेष कौशल या अनुभव वाले लोगों का एक चुनिंदा समूह में समाज में रचनात्मक होने की अधिक सम्भावना होती है और यही समूह सम्पूर्ण तथा एक दूसरे की तुलना में अधिक प्रभावी और अधिकार के पात्र होते हैं।

सर्वप्रथम यूनानी रोमन साहित्य के लिए इस शब्दावली का प्रयोग किया जाने लगा था। कालांतर में यही साहित्य पाश्चात्य साहित्य जगत के लिए अनुकरणीय बन गया। 15वीं – 16वीं सदी के श्रेष्ठ यूनानी तथा रोमन रचनाओं को क्लासिक (अभिजात्य) घोषित किया गया था। 18वीं सदी तक यही साहित्य उत्कृष्ट साहित्य की कसौटी बना रहा और परवर्ती साहित्यकारों को प्रभावित करता रहा।

अभिजात्यवाद की व्युत्पत्ति हमें लेटिन भाषा की ओर ले जाती है, जो 'एलोक्यूटियो' शब्द से अधिक सटीक है। अवधारणा, भाषण के विकास के दौरान विचारों और शब्दों को चुनने और आदेश देने के तरीके को संदर्भित करती है। अभिजात्यवाद अंग्रेजी भाषा के Classicism का हिन्दी रूपान्तरण है। Classicism शब्द Classic शब्द से बना है, जिसका अर्थ है– सर्वश्रेष्ठ,

---

* जन्म तिथि : 03 जनवरी 1975, पिता : श्री कौशल प्रसाद टण्डन, माता : श्रीमती फुलकुवर टण्डन, योग्यता : एम. ए. (हिन्दी, अंग्रेजी), सेट, पी–एच. डी, सम्प्रति : सहायक प्राध्यापक (हिन्दी), शासकीय महात्मा गांधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय खरसिया, मो. : 9685671995

अद्वितीय व गंभीरता। साहित्य के क्षेत्र में इसका अर्थ है– ''ऐसा साहित्य जिसकी समता कोई अन्य न कर सके।'' साहित्य के क्षेत्र में 'क्लासिक' शब्द की व्याख्या करते हुए विद्वानगण लिखते हैं– ''क्लासिकल काव्य से हमारा अभिप्राय वैसे काव्य से है, जो अपनी श्रेष्ठता, महानता और उत्कृष्टता की दृष्टि से अद्वितीय हो।''

रोमन साहित्य के तत्कालीन साहित्यकारों ने अपने पूर्ववर्ती साहित्यकारों के कृतित्व को ही अभिजात्यवाद की गरिमा से महिमा मण्डित किया है। उस युग के साहित्यकारों एवं समीक्षकों ने अपने पूर्ववर्ती साहित्यकारों के वैभवपूर्ण उदात्त साहित्य को दृष्टि में रखकर कुछ मान्यताएँ स्थापित की। प्राचीन रोम में पाठक वर्ग की सामाजिक और बौद्धिक स्थिति को देखते हुए दो प्रकार की साहित्य रचना की जा रही थी। Classicism को अभिजात्यवाद के अतिरिक्त शास्त्रवाद व शास्त्रीयवाद आदि नामों से पुकारा जाता है। ऐसा साहित्य जो अपने रूपबन्ध एवं संरचना में सौन्दर्यशास्त्रीय प्रतिमानों पर आधारित हो तथा जो साहित्य के सार्वभौम–शाश्वत मूल्यों का पालन करते हुए अपने रूपात्मक तंत्र में सुव्यवस्थित, सामंजस्यपूर्ण एवं सुपरिणत हो, उसे अभिजात्यवादी साहित्य की संज्ञा से अभिहित किया गया है।

अभिजात्यवाद के स्वरूप पर गेटे, शीलर, मैथ्यू आर्नाल्ड, ग्रियर्सन, एंबर काम्बी, इलियट आदि ने विचार व्यक्त किए हैं। अकादमी शब्दकोष के अनुसार, 19वीं शताब्दी में स्वच्छन्दतावाद के विरोध में अभिजात्य साहित्यकार उन्हें कहा गया, जो किसी भाषा में आदर्श माने जाते हों। 1694 में अकादमी शब्दकोष में अभिजात्य की परिभाषा देते हुए कहा गया है– ''एक बहु–प्रशंसित अपने वर्ण्य विषय पर प्रमाण स्वरूप लेखक को अभिजात्य साहित्यकार कहा गया।'' चार्ल्स आगस्टिन सैन्त त्येव स्वच्छन्दतावादी साहित्यकार होते हुए भी उन्होंने अभिजात्यवाद के बारे में अपने मौलिक विचार व्यक्त किए। वे कहते हैं– ''अभिजात्यवादी साहित्यकार एक ऐसा रचनाकार है, जिसने मानव–मन को समृद्ध किया हो, ज्ञान भण्डार की अभिवृद्धि की हो, जिसने किसी संदिग्ध सत्य का नहीं, नैतिक सत्य का अन्वेषण किया हो..., जिसने अपनी विशिष्ट शैली में सबको सम्बोधित किया हो, एक ऐसी शैली में, जो सम्पूर्ण विश्व की शैली प्रतीत होती है। वह नई भी हो और पुरानी भी हो तथा जो युग विशेष की शैली होते हुए भी युग–युग की शैली जान पड़े।''

सैन्त त्येव के अनुसार एकरुपता, संयम और विवेक, अभिजात्य रचना के गुण हैं। इन गुणों के अनुसार एक अभिजात्य साहित्यकार को संयमी, विवेकशील और उदात्त भावना से युक्त होना चाहिए। इलियट ने तो स्वयं को अभिजात्यवादी (क्लासिक वादी) कहा है। उनका कहना है कि अभिजात्य का अर्थ है– परिपक्वता या प्रौढ़ता। अतः अभिजात्य साहित्य की रचना तभी हो सकती है, जब सभ्यता, भाषा और साहित्य तीनों ही प्रौढ़ हो। यहाँ तक कि रचनाकार का मस्तिष्क भी प्रौढ़ हो। इलियट ने मस्तिष्क की प्रौढ़ता, शील की प्रौढ़ता, शैली की पूर्णता और वैश्विकता (विश्वजनीनता) को अभिजात्य के आवश्यक गुण मानते हैं।

अभिजात्यवाद (Classicism) की विशेषताएँ–

(क) अभिजात्यवाद में भव्य विचार लोक कल्याण की भावना रहती है।

(ख) अभिजात्यवाद में वस्तुनिष्ठ विषयवस्तु पर आधारित साहित्य की रचना होती है।

(ग) अभिजात्यवाद में साहित्य रचना काव्य परम्पराओं पर आधारित होती है। अभिजात्यवादी कवि यूनानी और रोमन साहित्यकारों का अनुसरण करता है।

(घ) अभिजात्यवाद में भाषा की प्रौढ़ता पर विशेष बल दिया गया है। भाषा परिष्कृत, व्याकरणसम्मत तथा भव्य होनी चाहिए। परन्तु भव्यता का यह अर्थ नहीं है कि भाषा क्लिष्ट हो; सरल और सामान्य भाषा भी प्रौढ़ हो सकती है।

(ङ) अभिजात्यवाद में साहित्य रचना करते समय कठोर संयम और अनुशासन पर बल दिया गया है। अभिजात्यवादियों के अनुसार, संयम के अभाव में भावनाओं की अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है, जो रचना को प्रभावहीन कर देती है।

■■

(11)

स्वच्छन्दतावाद

डॉ. जयती बिस्वास

स्वच्छंदतावाद अंग्रेजी भाषा के Romanticism शब्द का हिन्दी अनुवाद है। यह साहित्य जगत में एक आंदोलन के रूप में प्रारंभ हुआ। स्वच्छंदतावाद की शुरूआत पाश्चात्य विद्वानों ने परंपरावाद की साहित्यिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह के स्वरूप में किया। पाश्चात्य विद्वानों ने यह माना कि संपूर्ण विश्व साहित्य की रचना दो प्रवृत्तियों पर आधारित होती है–

1. परंपरावाद (Classicism)
2. स्वच्छन्दतावाद (Romanticism)

परंपरावादी काव्य वस्तु प्रधान तथा बाह्य नियमों से बँधे होते हैं। इन काव्यों में संयमशीलता, उदात्तता, महानता तथा गंभीरता जैसे गुणों का समावेश होता है। परंपरावादी काव्य में अनेकत्व में एकत्व की प्रतिष्ठा तथा विराट की संभावना अधिक होती है। ''काव्य में कवि का व्यक्तित्व ऐसा लीन होता है कि उसका पृथक अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है।''[1] ग्रीक और रोमन आचार्यों ने साहित्य लेखन के लिए कुछ आदर्श और रूपरेखा सम्बन्धी सामान्य नियम बना रखे थे, यही नियम दीर्घ काल तक चलते रहे। दीर्घकालीन चलने के कारण साहित्य की यह प्रवृति परंपरावादी कहलाने लगी। प्राचीन भारतीय साहित्य में भी परंपरावादी साहित्य की अधिकता रही।

---

* जन्म तिथि एवं स्थान : 25 अगस्त 1970, खैरागढ़, माता : श्रीमती ललिता श्रीवास्तव, पिता : श्री सियाराम श्रीवास्तव, पति : श्री उत्पल बिस्वास, सम्प्रति : सहायक प्रध्यापक (हिन्दी), विरांगना अवंती बाई महाविद्यालय, छुईखदान, मोबाईल नं. : 9424130323, ई–मेल : jaytibiswas25@gmail.com

स्वच्छन्दतावाद

स्वच्छंदतावादी काव्य परंपरावादी काव्य के विरोध में अपनी मान्यताओं को खड़ा करता है। स्वच्छंदतावादी काव्य आत्म प्रधान काव्य है। कवि अपनी अनुभूति और भावनाओं को कल्पना के माध्यम से दूसरों तक इस शैली में पहुँचाता है कि पढ़ने वाला उसे उसी भाव के साथ ग्रहण कर सके। स्वच्छंदतावादी कवि, न ही परंपरावादी कवि की तरह पांडित्य प्रदर्शन करता है; न ही वह रस छंद, अलंकार आदि के नियमों का पालन करता है। स्वछंदतावादी कवि अपने भावों और विचारों को अपने काव्य के माध्यम से दूसरों तक उसी रूप में पहुँचाता है। अतः अनुभूति की तीव्रता की अभिव्यक्ति ही स्वच्छंदतावाद का प्रमुख उद्देश्य होता है। कवि अपने सुख–दुख, आशा–निराशा, हँसी–खुशी की अभिव्यक्ति करते हैं।

स्वच्छंदतावाद की पृष्ठभूमि

आधुनिक युग की जिन परिस्थितियों ने वैश्विक स्वच्छंदतावाद को जन्म दिया, उसे संक्षेप में डॉ. पी. आदेश्वर राव इन बिन्दुओं के माध्यम से देखते हैं–

1. राजनीतिक परिस्थिति,
2. आर्थिक परिस्थिति,
3. सामाजिक परिस्थिति,
4. धार्मिक परिस्थिति,
5. साहित्यिक परिस्थिति।

राजनीतिक परिस्थिति– संपूर्ण मानव जाति के लिए 19वीं शताब्दी अनेक उपलब्धियों के कारण महत्वपूर्ण थी। इस युग में डार्विन, न्यूटन, रूसो, वाल्टेयर तथा एडम स्मिथ जैसे वैज्ञानिक व विचारकों ने जन साधारण की विचारधारा में नवीनता का संचार किया। इससे विज्ञान और धर्म को तर्क की कसौटी पर कसा गया। यूरोप में ईसाईयत का एकाधिकार था। चर्च की मान्यताओं का विरोध करने का साहस किसी में न था। वैज्ञानिकों ने प्रकृति का गहन अन्वेषण कर अंधविश्वासों को दूर किया तथा उसमें निहित तथ्यों का उद्घाटन कर वैज्ञानिक दृष्टिकोण की ओर जनसाधारण को प्रेरित किया। वैज्ञानिक दृष्टि के प्रभाव से ही फ्रांस में राज्य क्रांति तथा अमेरिका

में स्वतंत्रता संग्राम चला। इन क्रांतियों ने मानव हृदय में स्ववंत्रता, समानता तथा मातृ भावना को जन्म दिया।

भारतीय समाज में भी इन क्रांतियों का प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रभाव पड़ा। सन् 1857 में भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम हुआ। इसी वर्ष ईस्ट इंडिया कंपनी का अधिकार समाप्त हुआ। ब्रिटिश पार्लियामेंट ने राज्यपालन का भार अपने ऊपर ले लिया। महारानी विक्टोरिया ने यह घोषणा की कि भारतवर्ष में धार्मिक हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा। सभी जातियों के प्रति न्याय, राजाओं की स्वतंत्रता तथा अंग्रेजों की विस्तारवादी नीतियों को तिलांजली दी जाएगी। इस प्रकार भारत वर्ष में भी प्राचीनता एवं नवीनता के बीच विद्रोह के स्वर उठने लगे और भारतीयों के मन में स्वतंत्रता प्राप्ति की आशा बढ़ने लगी।

कुछ ही समय में अंग्रेज नीति की सच्चाई सामने आने लगी। उन्होंने भारत वर्ष में डाक, तार, रेल, सड़क आदि की व्यवस्था सुदृढ़ की। जिससे वे भारत के कच्चे माल को सस्ते दाम में ले जाकर तैयार सामग्री को यहाँ महंगी कीमत में बेच सके। लोगों को उनकी यह नीति समझ आने लगी। देशव्यापी असंतोष दिखने लगा। राष्ट्रीयता की भावना जन्म लेने लगी। सभी जातियाँ एक जुट होकर आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में अपना योगदान देने का निश्चय करने लगीं। अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार–प्रसार से पाश्चात्य विचारधारा को समझने में सहायता मिली। समानता, भाईचारा, व्यक्तिवाद के विचारों ने भारत में स्वच्छन्दतावाद के प्रादुर्भाव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

आर्थिक परिस्थितियाँ– अंग्रजों के आगमन से पूर्व देश में भारतीय हित सुरक्षित थे। यहाँ की जनता अपने जातिगत व्यवसाय से संतुष्ट थी। 16वीं शताब्दी में इस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना से अंग्रेज भारत में व्यापार के माध्यम से आधिपत्य जमा रहे थे।

19 वीं शताब्दी विश्व में मशीनों के आविष्कार के कारण वैज्ञानिक युग के प्रारंभ का युग माना जाता है। इन्हीं मशीनों का उपयोग अंग्रेजों ने भारत में भी करना प्रारंभ कर दिया। फलतः मजदूरों की दशा दयनीय होने लगी। किसान और पूंजीपति भी अंग्रेजों की दमनकारी नीति से बचे नहीं रह सके। देश के छोटे–बड़े उद्योगों पर दुष्प्रभाव स्पष्ट दिखने लगा। पूंजीवाद के

प्रभाव ने नगरों को जन्म दिया। लोग अपने अस्तित्व के संघर्ष के लिए नगर की ओर जाने लगे। फलतः मध्यमवर्गीय विसंगतियाँ कम होने की जगह बढ़ने लगी। देशवासी यह समझ गये कि अंग्रेज भारत का विकास नहीं चाहते। इस परिवर्तन का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा। स्वच्छन्दतावादी कवि इन्हीं मध्यवर्गीय परिवार के बीच के कवि थे, जिन्होंने अपने काव्य में मध्यमवर्गीय चेतना, देश की विपन्नता, आम जन के हृदय में व्याप्त निराशा और वेदना को स्थान दिया।

सामाजिक परिस्थितियाँ– मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज के अन्दर घटित होने वाली घटनाओं का प्रभाव मानव हृदय पर पड़ना स्वाभाविक है। कवि हृदय भी इन परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना नही रह सकता। अंग्रेजों के भारत आगमन से भारतीय जनता यूरोप में होने वाले परिवर्तनों को जानने व समझने लगी। अंग्रेजों के भारत आगमन से भारतीय समाज में जो बदलाव हुए, उन्हें निम्नलिखित बिन्दुओं से देखा जा सकता है–

1. अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार–प्रसार से भारतीय जनता यूरोपीय विचारधारा से प्रभावित हुई, परिणामस्वरूप भूली हुई देशभक्ति पुनः जागृत होने लगी।

2. व्यक्तिगत स्वार्थ का स्थान समाज व राष्ट्र भक्ति ने लेना प्रारंभ कर दिया। नवजागरण के साथ राजनैतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक चेतना का परिवेश बनने लगा। जिससे रूढ़ियों, कुरीतियों व अंधविश्वासों पर लोगों का ध्यानाकर्षित हुआ। इनके दुष्परिणाम पर चिंतन किया जाने लगा, परिणाम स्वरूप सामाजिक समानता व राष्ट्रभक्ति की भावनाएँ जन्म लेने लगी।

3. मुद्रण कला ने भारतीय समाज ही नहीं, वैश्विक समाज पर भी गहरा प्रभाव डाला। इसकी सहायता से विचारक अपने विचारों को असंख्य लोगों तक पहुँचा पाने में समर्थ हो सके।

4. पाश्चात्य विचारधाराओं में उदारतावाद तथा व्यक्तिवाद का आंदोलन चल रहा था। इन वादों का भी स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा में प्रभाव पड़ा। उदारतावाद और व्यक्तिवाद व्यक्ति को सामाजिक प्राणी मानते हुए भी उन्हें भावनाओं की स्वतंत्रता का अधिकार देते हैं। सामाजिक बंधन, रीति–रिवाज, मान्यताएँ व्यक्ति पर शासन नही कर सकते। व्यक्ति अपने हित–अहित

सोचने व चुनने में स्वतंत्र है।

5. 19वीं शताब्दी सामाजिक आंदोलन व सुधारों के साथ अविष्कारों की भी रही है। जिस तरह समाज में मशीनों के आने से जीवन शैली में परिवर्तन हुआ, वैसे ही साहित्य पर भी इसका प्रभाव पड़ा। भारत वर्ष में सामाजिक सुधार हेतु अनेक विद्वानों व चिंतकों ने इस दिशा में अभियान चलाया। इनमें आर्य समाज, ब्रह्म समाज, विधवा विवाह, प्रार्थना, मंदिर आदि को शामिल किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, संत अरविंदो जैसे महानुभाओं ने भारत का गौरव गान करके भारतीयों की सांस्कृतिक चेतना को जागृत करने का कार्य किया। इन सुधारवादी संस्थाओं और संतो के जीवन दर्शन का प्रभाव भारतीय साहित्य में पड़ा।

साहित्यिक प्रवृतियाँ– 19वीं शताब्दी का समय भारतीय साहित्य में रीतिकाल का था। इस युग की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ उपदेशात्मक, समस्यापूर्ति, तुकबंदी, अलंकारिता तथा नीति परक काव्य से परिपूर्ण होती थी। इनसे पाठक बोझिल व नीरस हो चुके थे। साहित्य की भाषा ब्रज के स्थान पर खड़ी बोली लेने लगी। रीति की समाप्ति तथा आधुनिक काल के प्रारंभ में कवियों ने परंपरावादी काव्य के स्थान पर युग की आवश्यकता के अनुरूप सृजन करने का प्रयास किया। इन कवियों में मैथिलीशरण गुप्त, माखन लाल चतुर्वेदी, अयोध्यासिंह उपाध्याय प्रमुख हैं।

इस तरह अनेक परिस्थितियों ने स्वच्छन्दतावाद को साहित्य में प्रतिष्ठित किया। स्वच्छन्दतावाद के प्रमुख कवियों में जर्मनी के श्लेग्लस बंधु (1800 ई. के आसपास), इंग्लैंड के वड्र्सवर्थ, कॉलरिज, शेली, कीट्स, बाण्ट शेलिंग, फ्रेटरिक, गेटे, विलियम ब्लैक प्रमुख हैं। हिन्दी के कवियों में श्रीधर पाठक, पं. बद्रीनाथ भट्ट, श्री रामनरेश त्रिपाठी, रामधारी सिंह दिनकर, हरिवंश राय बच्चन, नरेन्द्र, अंचल, माखनलाल चतुर्वेदी, सियाराम शरण गुप्त, सुमित्रा नंदन पंत, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, श्री जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा प्रमुख हैं। इन्होंने स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा की प्रगति में योगदान दिया।

स्वच्छंदतावाद की परिभाषा

वाल्टर पेटर ने स्वच्छन्दतावाद की परिभाषा इन शब्दों में दी है– ''सौन्दर्य में अपूर्वता का योग स्वच्छन्दतावाद है।''[2] डॉ. सुशील द्विवेदी ने इस

सौन्दर्य में प्रेम तथा जिज्ञासा को प्रमुख माना है तथा इनके संतुलन को भी आवश्यक कहा है। स्वच्छन्दतावादी कवि सौन्दर्य–प्रेम के कारण ही सौन्दर्य के प्रति आकृष्ट होते हैं तथा जिज्ञासा के कारण निरंतर नवीन सौन्दर्य की खोज करते हैं। उन्होंने पं. राम नरेश त्रिपाठी की रचना पथिक में सौन्दर्य, प्रेम और जिज्ञासा के मणिकांचन को रेखांकित करते हुए उदाहरण दिया है–

''देख अतुल सौन्दर्य तुम्हारा, मग्न हुआ मेरा मन,
उसे देखने की दृढ़ इच्छा, प्रबल हो उठी मन में ।''[3]

अंग्रेजी साहित्य के इतिहास में स्वच्छन्दतावाद की परिभाषा इस तरह प्रस्तुत की गई है– ''स्वच्छन्दतावादी चेतना वह चेतना है, जिसमें भावुकतामय जीवन का प्राधान्य हो, जो कल्पना की दृष्टि से अथवा उद्दीप्त निर्दिष्ट हुआ हो और जिसमें स्वयं कवि की आत्मा इस कल्पना दृष्टि को सशक्त बनाती हो एवं निर्देश करती हो।'' हिन्दी साहित्य कोष के अनुसार, ''साहित्यिक उदारवाद ही रोमाण्टिसिज्म है''[4] अर्थात् प्राचीन शिष्टा और क्लासिक परिपाटी के विरोध में उठ खड़ी होने वाली विचारधारा को रोमेण्टिसिज्म कहा गया।''[5] डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, ''रोमाण्टिक साहित्य का वास्तविक उत्स–भूमि वह मानसिक गठन है, जिसमें कल्पना के अविरल प्रवाह से घन संश्लिष्ट निविड़ आवेश की ही प्रधानता होती है। इस प्रकार कल्पना का अविरल प्रवाह और निविड़ आवेग वे दो घनीभूत मानसिक वृत्तियाँ ही इस व्यक्तित्व प्रधान साहित्यिक रूप की प्रधान जननी है। परंतु यह नही समझना चाहिए कि ये दोनों एक–दूसरे से अलग रहकर काम करती हैं।''[6] श्री कृष्ण लाल के अनुसार, ''स्वच्छन्दतावाद केवल एक साहित्यिक आंदोलन मात्र न था, वरन् वह कलात्मक और दार्शनिक आंदोलन भी था। इसमें विश्व की वेदना, सृष्टि का रहस्य, उदात्त भावना, प्रेम और वीरता को अपनाने की तीव्र आकांक्षा, अलभ्य श्रेय से उद्भूत एकान्त वेदना और अनंत निराशा आदि विशिष्ट दार्शनिक वृत्तियों का प्रदर्शन था।''[7]

इन उद्धरणों से यह बात स्पष्ट होती है कि कवि अपनी कल्पना से ऐसे काव्य का सृजन करते हैं, जिसमें अनुभूतियों की अभिव्यक्ति विशुद्धता से हो सके। व्यक्तिगत सुख–दुख की अभिव्यक्ति के साथ विश्व की वेदना तथा सौन्दर्य के प्रति भी आकर्षण स्च्छंदतावादी कवियों के काव्य की विशेषताएँ है।

स्वच्छन्दतावाद के विकास क्रम

''हिन्दी साहित्य में स्वच्छन्दतावाद के विकास क्रम को लेखक डॉ. पी. आदेश्वर राव तीन भागों में बाँटते है–

1. स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा का प्रथम उत्थान सन् 1875 से 1913 ई,
2. स्वच्छन्तावादी काव्य धारा का द्वितीय उत्थान सन् 1923 से 1935 ई,
3. ह्रासोन्मुख काल सन् 1936 से 1942 ई.।''[8]

स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा का प्रथम उत्थान–

डॉ. पी. आदेश्वर राव जी, प्रथम उत्थान का समय भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग के संधिकाल को मानते हैं। इस समय श्रीधर पाठक जी का साहित्य में प्रादुर्भाव हुआ। इन्होंने ब्रज और खड़ी बोली दोनों ही भाषा को साहित्य सृजन का माध्यम बनाया। खड़ी बोली में रचना करके इन्होंने लंबी परंपरा से चली आ रही ब्रजभाषा की परिपाटी को बदलकर अपनी स्वच्छन्दता का परिचय दिया। पाश्चात्य साहित्य का अध्ययन कर उसका हिन्दी संस्करण निकाला। सन् 1886 में अंग्रेजी काव्य हरमिट का एकांतवासी योगी के नाम से खड़ी बोली में अनुवाद किया। सन् 1902 में ''द ट्रेवलर'' का श्रांत पथिक के नाम से खड़ी बोली में अनुवाद किया।[9] डेजटेंड विलज का अनुवाद उबड़–खाबड़ ग्राम शीर्षक से किया।[10] इन अनुदित कृतियों के साथ ही श्रीधर पाठक जी ने काश्मीर सुषमा देहरादून भारत गीत नामक मौलिक रचनाओं का सृजन किया, मिलन पथिक तथा स्वप्न नामक तीन खण्ड काव्यों की भी रचना की। इन ग्रंथों में पाठक जी ने परंपरा से, न ही विषय लिए, न ही भाषा ली; बल्कि नवीन विषय व कल्पना के संयोग से अपनी भावना की सरस अभिव्यक्ति की। प्रस्तुत कविता उदाहरणार्थ दृष्टव्य है–

''चारू हिमाचल आँचल में, एक साल बिसालन कौ बात है।
मृदुमर्मर शीत झर जल स्रोत है, पर्वत ओट है निर्जन है।
लिपटे है लता द्रुम गान में लीन प्रवीन विहंगम कौ गन है।
भटक्यों तहाँ रावरो मूल्यों फिरै, मद बावरौ सौ अलि को मन है।''[11]

श्रीधर पाठक जी की रचनाओं में प्रकृति चित्रण में नवीन स्वरूप दिखता है। इनकी कविताओं का मुख्य स्वर राष्ट्रप्रेम, प्रेम–भावना तथा समाज सुधार है। डॉ. शिव सहाय पाठक, श्रीधर पाठक जी की काव्यगत

विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं– ''एक ओर इन्होंने भारतोत्थान, भारत–प्रशंसा जैसी देशभक्ति पूर्ण कविताएँ लिखी, तो दूसरी ओर जार्ज वंदना जैसी कविताओं में राजभक्ति का प्रदर्शन किया है। समाज सुधार के प्रति भी इनकी दृष्टि बराबर रही है। बाल–विधवा में इन्होंने विधवाओं की व्यथा का कारूणिक चित्रण किया है।''[12]

श्रीधर पाठक के अतिरिक्त पं. बद्रीनाथ भट्ट, मुकुटधर पाण्डे, माखनलाल चतुर्वेदी, सियाराम शरण गुप्त, सुभद्रा कुमारी चौहान ने स्वच्छन्दतावाद के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा का द्वितीय उत्थान–

लेखक डॉ. पी. आदेश्वर राव ने स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा का द्वितीय उत्थान सन् 1914 से 1935 तक माना है। इसी समय साहित्य की एक और प्रवृति स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा के समांतर चल रही थी, जिसे छायावाद के नाम से जाना जाता है। कुछ विद्वान छायावाद को स्वच्छन्दतावाद के पर्याय के रूप में देखते हैं। छायावादी काव्यधारा के चार प्रमुख स्तंभ (पंत, प्रसाद, निराला एवं वर्मा) की रचनाओं में स्वछन्दतावाद की विशेषताएँ भी देखते हैं। समकालीन चलने वाली काव्यधाराओं का परस्पर प्रभाव स्वाभाविक है। स्वच्छन्दतावाद के विषय में पंत जी स्वयं पल्लव में लिखते हैं, ''नए हाथों का प्रयत्न, जीवित साँसों का स्पन्दन, आधुनिक इच्छाओं से अंकुर, वर्तमान के पद चिन्ह, भूत की चेतावनी, भविष्य की आशा अथवा नवीन युग की नवीन सृष्टि का समावेश है। उसमें नए कटाक्ष, नए रोमांच, नए स्वप्न, नया हास, नया खून, नया हृत्कंपन्न, नवीन बसंत, नवीन कोकिलाओं का गान है।''[13] पंत जी का यह कथन स्वच्छन्दतावादी काव्य के बाहरी व भीतरी कलेवर को स्पष्ट करता है, जिसमें रचनाकार की भाषा–शैली, छंद विधान, कल्पना आदि में नवीनता की छाप परिलक्षित होती है। स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रवृति द्वितीय उत्थान में उत्कर्ष पर थी। सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा आदि कवियों ने खड़ी बोली में काव्य रचना कर कविता को भाषा की दृष्टि से स्वच्छन्द किया।

स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा का ह्रासोन्मुख काल

इस समय तक स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा की प्रवृत्ति धीमी हो चुकी

थी। छायावादी प्रमुख कवियों के साहित्य लेखन के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ। प्रसाद जी का असमय देहावसान साहित्य की अपूर्णनीय क्षति थी। पंत और निराला प्रगतिवाद की ओर बढ़ चले तथा महादेवी वर्मा के काव्य में आध्यात्मिक रहस्यवाद की अनुभूति होती है। प्रकृति की परिवर्तनशीलता के नियम की तरह ही साहित्य की प्रवृति में परिवर्तन स्वाभाविक है। स्वच्छन्दतावाद का यह काल भी परिवर्तन को स्पष्ट करता है। इस विषय में श्री रामधारी सिंह दिनकर की उक्ति दृष्टव्य है, ''साहित्य में कोई भी धारा बहुत दिनों तक नही ठहरती। कारण, एक शैली के बहुकाल तक प्रचलित रहने से अभिव्यक्ति में एकरूपता आ जाती है, एक ही प्रकार के शब्द बार–बार प्रयुक्त होने से शब्द अपना जादू खो बैठतें हैं और लीक इतनी पिटी पिटायी और परिचित हो जाती है कि उस पर चलने वाला कोई भी कवि इस विश्वास से बोल नहीं पाता कि वह कोई नई बात बोल रहा है।''[14] अतः स्वच्छन्दतावाद की जगह साहित्य में प्रगतिवाद स्थापित हो गया।

छायावाद और स्वच्छन्दतावाद में साम्य

छायावाद और स्वच्छन्दतावाद हिन्दी साहित्य में गुंफित हैं। अतः इनके साम्य और वैषम्य पर ध्यानाकर्षित होना स्वाभाविक है। पहले हम इनके साम्य पर विचार करते हैं।

आत्म अभिव्यंजनात्मकता (व्यक्तित्व का प्रकाशन)– छायावादी और स्वच्छन्दतावादी कवियों में वैयक्तिकता की प्रधानता होती है। ये कवि इसलिए संवेदनशील होते हैं। ये अपने व्यक्तिगत सुख–दुख, आशा–निराशा, संघर्ष तथा जीवन के प्रति अपने चिंतन को कविता के माध्यम से स्पष्ट करते हैं। सुमित्रानंदन पंत मधुमास के प्रभात के समय इतना हर्ष–पुलकित हो जाते हैं कि उस आनंद में नहीं समा सकने के कारण आत्म विभोर होकर कहते हैं–

आज नव मधु की प्रात,
झलकती नभ पलकों में प्राण।
मुग्ध यौवन के स्वप्न समान,
झलकती मेरी जीवन स्वप्न प्रभात,
तुम्हारी मुख छवि सी रूचिमान।''[15]

कल्पनाशीलता– कवि अपनी भावना की अभिव्यक्ति के लिए काल्पनिक दुनिया की सृष्टि कर लेते हैं और प्रकृति की सहायता से चित्रात्मक सौन्दर्य प्रस्तुत करते हैं। कवि पंत अपनी कल्पनाशीलता के कारण विशिष्ट स्थान रखते हैं। बादल कविता में उनकी कल्पना का मनोहारी दृश्य प्रस्तुत है–

''हम सागर के धवल हास हैं
जल के धूम गगन की धूल
अनिल फेन ऊषा के पल्लव,
वारि वसन वसुधा के मूल।''[16]

यह छन्द बादल के महत्व से परिचित कराता है। बादल का मानवीकरण कर कवि ने अपनी कल्पना को साकार किया है।

वैयक्तिक सुख–दुख की अभिव्यक्ति– कवि अपने सुख–दुख की खुलकर अभिव्यक्ति करते हैं। हर्ष–विषाद, सुख–दुख की अनुभूति मानव जीवन की सहज अनूभूतियाँ है। जीवन में मिलने वाली खुशियाँ जहाँ व्यक्ति को ऊर्जावान बनाती है, वहीं व्यथा की अभिव्यक्ति मन को हल्का करती है। निराला जी अपनी पुत्री सरोज की असामयिक मृत्यु की असहय पीड़ा को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं–

''दुख ही जीवन की पीड़ा रही,
क्या कहूँ आज जो नहीं कहीं।''[17]

वेदना की अभिव्यक्ति की तरह ही इन्होंने निराशा को भी व्यक्त किया है। कवि कृष्ण कुमार शास्त्री अपनी निराशा को इन पंक्तियों में कहते हैं–

''एक–एक गिरती है, आँसू की बूँदे अविरल,
रोता हूँ, बिना रोए मैं रह न सकूँगा।''[18]

कवि जयशंकर प्रसाद भी अपनी मार्मिक वेदना को इन शब्दों के माध्यम से कहते हैं–

''रो–रो कर सिसक सिसक कर,
कहता मैं अपनी करूण कहानी।''[19]

स्वच्छन्दतावादी (छायावादी) कवियों ने जहाँ विरह के काव्य लिए, वहाँ इन्होंने मिलन की सुखात्मक अनुभूति को भी कहा है। कवि निराला 'जूही की कली' में नायक–नायिका मिलन को मोहक अंदाज में प्रस्तुत करते

हैं–

''नायक ने चूमे कपोल,
डोल उठी वल्लरी की लड़ी, जैसे हिडोल।
इस पर भी जागी नहीं,
चूक क्षमा मांगी नहीं।
निद्रालस बकिम विशाल नेत्र मूँदे रही–
किम्बा मतवाली थी, यौवन की मदिरा पिये कौन सहे?
निर्दय उस नायक ने,
निपट निठराई की,
कि सौके की झाड़ियों से,
सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली,
मसल दिया गोरे कपोल गाल,
चौक पड़ी युवती,
चकित चितवन निज चारों ओर फेर,
हेर प्यारे को सेज पास,
नम्र सुखी हँसी खिली,
खेल रंग प्यारे संग।''[20]

यह कविता मिलन के पवित्र पक्ष और उसकी प्रसन्नता को भी अभिव्यक्त करती है। कवि प्राकृतिक तत्वों में नायक–नायिका की छवि महसूस कर जीवन–रस का आनंद ले रहे हैं।

सौन्दर्य–निरूपण– सौन्दर्य के प्रति आकर्षण मानव की सहज वृत्ति है। ये कवि (स्वच्छन्दतावादी, छायावादी) संपूर्ण विश्व में विस्तारित कण–कण के अप्रतिम सौन्दर्य को अपनी शैली में प्रस्तुत करते हैं। कवि की दृष्टि प्रकृति के न केवल बाह्य सौन्दर्य को निहारने में होती है, वरन् मानव हृदय में निहित सौन्दर्य भावना की भी पारखी होती है। श्री जयशंकर प्रसाद अपने देश की संस्कृति के प्रति तो आसक्त हैं ही, साथ ही उन्हें अपने देश के भौगोलिक और प्राकृतिक सौन्दर्य से भी असीम प्यार है। वे कहते हैं–

''अरूण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अंजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
सरस तामरस गर्भ विभा पर,
नाच रही तरु शिखा मनोहर,
छिटका जीवन हरियाली पर मंगल कुंकुम तारा।''[21]

कवि प्रसाद अपने देश की प्राकृतिक छटा से जितना प्रेम करते हैं, उतना ही उन्हें भारत के ज्ञान–विज्ञान से भी प्रीति है। ज्ञान–विज्ञान में निहित सौन्दर्य को चित्रित करते हुए कहते हैं–

''जगे हम लगे जगाने विश्व,
लोक में फैला फिर आलोक।
व्योम तम पुँज हुआ तब नाश,
अखिल संसृति हो उठी अशोक।''[22]

नारी संबंधी दृष्टिकोण– इन कवियों ने नारी के अनंत सौन्दर्य, नारी हृदय में निहित पवित्रता तथा उदात्त भावना का प्रकाशन किया। नारी के दिव्य व आदर्श स्वरूप की कल्पना कर उसे ऐश्वर्य व ऊँचाइयों में पहुँचाया। प्रसाद जी 'कामायनी' में नारी की कोमलता, पवित्रता तथा समर्पण को इन शब्दों में पंक्तिबद्ध करते हैं–

''नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग–पग तल में,
पीयूष स्रोत–सी बहा करो,
जीवन के समतल में।''[23]

नारी अपने इन गुणों को सहज ही बिखेर कर सबके जीवन में बसंती खुशहाली का संचार करती है। यही सहजता नारी हृदय का सौन्दर्य है। 'कामायनी' की 'श्रद्धा', 'मनु' से कहती है–

''दया–माया ममता लो आज,
मधुरिमा लो अगाध विश्वास,
हमारा हृदय रत्न निधि स्वच्छ।
तुम्हारे लिए खुला है पास,

बनो संस्कृति के मूल रहस्य।
तुम्हीं से फैलेगी वह बेल,
विश्व सौरभ से भर जाए।
सुमन के खेलो सुन्दर खेल।''[24]

स्वच्छदन्तावादी (छायावादी) कवियों ने न केवल नारी हृदय के आत्मबलिदान व उनके उच्चादर्शों को स्थान दिया, बल्कि वे नारी के प्रति अपनी सहानुभूति भी अभिव्यक्ति करते हैं। कामायानी की श्रद्धा अपना सर्वस्व अर्पित करके भी मनु के हृदय में अपने लिए सम्मान की भावना जागृत नहीं कर पाती। प्रसाद जी श्रद्धा के आहत मन को इन शब्दों में अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं–

''तुम भूल गए पुरूषत्व मोह में कुछ सत्ता है नारी की।
समरसता ही संबंध बनी अधिकार और अधिकारिणी की।''[25]

प्रकृति चित्रण– स्वच्छन्दतावादी (छायावादी) कवियों ने प्रकृति में चेतन तत्वों को निरूपित किया। इन्होंने प्रकृति के आलंबन और उद्दीपन दोनों ही ग्रहण किया, बिंब विधान व प्रतीक–योजना के माध्यम से अप्रस्तुत तथा परोक्ष सत्ता का आभास दिलाया और प्रकृति का मानवीकण कर उसके शीतल कोमल स्वरूपों के साथ भीषण दृश्यों को भी प्रस्तुत किया। कविवर निराला 'संध्या–सुन्दरी' नामक कविता में संध्याकालीन–सौन्दर्य में नारी सौन्दर्य का आभास पाते हैं–

''दिवसावसान का समय,
मेघमय आसमान से उतर रही है,
वह संध्या सुन्दरी परी–सी,
धीरे–धीरे–धीरे।
तिमिरांचल में चंचलता का नहीं कहीं आभास,
मधुर–मधुर है दोनों उसके अधर,
किन्तु जरा गंभीर,
नहीं है उनमें हास–विलास।''[26]

छायावाद और स्वच्छन्दतावाद में वैषम्य

जिन कवियों ने स्वच्छन्दतावादी रचनाएँ की, उन्होंने ही छायावादी कविताओं की भी रचना की। छायावाद व स्वच्छन्दतावाद में मूलभूत अंतर यह है कि छायावाद, साहित्य के अन्य वाद (यथार्थवाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, आदर्शवाद) की तरह ही एक प्रवृत्ति है; जो भाषा, शैली, वर्ण्य–विषय आदि दृष्टि से विशिष्ट व अलग है। किन्तु स्वच्छन्दतावाद नाम से ही स्पष्ट है कि इन कवियों ने सभी बंधनों का तिरस्कार कर मुक्त कंठ व मुक्त हृदय से काव्य सृजन किया। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र स्वच्छन्दतावाद की विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए कहते हैं, ''स्वच्छन्दतावादी उन्मुक्त मनोविलास में रमता है। जीवन व जगत् के बंधन से उद्विग्न हो वह प्रगतिवादी या रहस्यवादी नहीं बनना चाहता, यही स्थिति सर्वत्र शैली और भाषा में भी है। उसके उद्‌गार नवीन होते हैं। पर नवीनता का तात्पर्य ऊटपटांग शब्द योजना नहीं। अर्थात वह प्रयोगवाद भी नहीं होता। उसकी नूतन सृष्टि विश्वामित्र्रा नहीं। जाने पहचाने शब्दों और सारणियों में वह नव्यता ला देता है या आपसे आप वह आती है। हेतु वही, मन का उन्मुक्त विहार उन्मुक्त, व्यवहार नहीं। मन किसी भावधारा में निमग्नोन्मग्न होकर व्यवहार करता है। मानस लहरियाँ भाव की व्यवस्था मानकर चलती है।... प्रगतिवाद को चाहे समाजवादी कहिए, चाहे सुधारवादी; रहस्यवादी को चाहे आध्यात्मवादी कहिए या निर्गुणवादी; प्रयोगवादी को चाहे चमत्कारवाद कहिए या चाकचिक्यवादी। इन सबका सांकर्य होता है। स्वच्छन्दतावादी रहस्यवाद के साथ भी आ सकता है और प्रयोगवाद के साथ भी हाथ मिला सकता है। यदि कोई मूलतः स्वच्छन्दतावादी है तो उसका अन्य वादों के साथ आना–जाना काव्य को बिगड़ने नहीं देता। पर यदि वह अन्य वादों के चक्कर में अपना मूल रूप ही खो बैठता है, तो उसकी रचना काव्य की सीमा का अतिक्रमण करने लगती है।''[27]

अतः यह बात स्पष्ट है कि कवि कविता के माध्यम से अपनी आत्मानुभूति प्रकट करते हैं। वैयक्तिक अनुभूति के साथ वे परमार्थ को भी तिरोहित नहीं करते। व्यक्तिगत सुख–दुख की अभिव्यक्ति के प्रति संवेदनशील होते हैं। अनुभूतियों के अक्षय भंडार के साथ–साथ वे समाज के गुण–दोषों से भी प्रभावित होते हैं। स्वच्छन्दतावादी कवियों की रचनाएँ उनके स्वयं के

सुख–दुख को लपेटे हुए भी किसी आवरण में नहीं होते। उन्मुक्त अभिव्यक्ति स्वच्छन्दतावाद की प्रमुख विशेषता है।

डॉ. उमाकांत गोयल छायावाद और स्वच्छन्दतावाद में अंतर स्पष्ट करते हुए कहते हैं, ''छायावादी काव्य स्वच्छन्दता कम और पुनरूत्थानवादी अधिक था। छायावाद की प्रणयानुभूति पर रीतिकालीन श्रृंगार चित्रण का काफी प्रभाव है। काव्य शास्त्र मूल्यों की दृष्टि से भी छायावाद, प्राचीन सिद्धांत विशेषकर रस सिद्धांत के अनुरूप है और जहाँ तक दार्शनिक सिद्धांतों का संबंध है, छायावाद काव्य सर्ववाद, कर्मवाद, वेदांत, शैव दर्शन, अद्वैतवाद, भक्ति आदि पुराने सिद्धांतों को ही व्यक्त करता दिखाई देता है।''[29]

स्वच्छन्दतावाद की प्रवृत्ति

आचार्य विश्वनाथ मिश्र स्वच्छन्दतावाद की 3 प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालते हैं– 1. बहिर्वृत्ति में लीनता, 2. अंतर्वृत्तियों में रमण, 3. उभय विध का अवलंबन। इन प्रवृत्तियों की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए वे कहते हैं, ''जिसमें बहिर्वृत्ति की लीनता होती है, वह व्यक्त प्रसार में रमता है।..... सृष्टि का सौन्दर्य वह निरपेक्ष नहीं देख पाता। प्रकृति के व्यापारों में मानव व्यापारों का, अनुभूति विशिष्ट मानव व्यापारों का आरोप कर लेता है। अनुभूति विशिष्ट व्यापारों के आरोप की दृष्टि से कुछ ऐसे दिखाई देते है, जिन्हें सृष्टि में प्रणय–ही–प्रणय दिखता है।.....जिसमें अंतर्वृत्ति का रमण होता है, वह भाव–भेद में मग्न होता है और दूसरों को करता है। हिन्दी की उभयविध वृत्ति का अवलंबन करते वाले की दोनों वृत्तियाँ होती है। हिन्दी की आधुनिक कविताओं में श्री सुमित्रा नंदन पंत में बहिर्वृत्ति की लीनता प्रधान है; श्री जयशंकर प्रसाद में अंतर्वृत्ति की रमणीयता। निराला ने उभयविध वृत्तियों का अवलंबन समान रूप में किया है। ये तीनों कवि अपने मूल रूप में स्वच्छन्दतावादी ही हैं। पर अन्य वादों की ओर भी ये सहज प्रवृत्त हुए हैं। महादेवी वर्मा की कविताओं में भी रहस्य की प्रवृत्ति है। उनकी आध्यात्मिक साधना में सत्य के पारमार्थिक स्वरूप का संबंध है। महादेवी वर्मा स्वयं सृष्टि को एक असीम सत्य की ही सौन्दर्यमयी अभिव्यक्ति मानती हैं।''[28]

निष्कर्ष

अतः यह कहा जा सकता है कि साहित्य में स्वच्छन्दतावाद, परंपरावाद

के प्रति एक वैचारिक आंदोलन था। इसमें तत्कालीन राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियों के साथ साहित्य की प्रवृत्तियों का भी प्रभाव पड़ा। बदलते परिवेश ने कवियों के हृदय में स्वतंत्रता, समानता, विश्व बंधुत्व जैसी भावनाओं को जन्म दिया। इन कवियों ने बाह्य वास्तविकता के साथ आंतरिक अनुभूतियों को भी साहित्य का विषय बनाया। इन कवियों को नदी, पहाड़, पशु–पक्षी, फूल–पत्तों के प्रति जो अनुराग है, उतना ही वे झोपड़ीवासी बालिका से भी अनुरक्त है। निराला जी की 'तोड़ती पत्थर', माखन लाल चतुर्वेदी जी की रचना 'मैं बेच रही हूँ दही' इस विषय में दृष्ट्य हैं। ये कवि अपने हृदय की सहज अनुभूतियों को असीम से जोड़कर स्वाभाविक काव्य रचना करते हैं। इनकी कृतियों में कल्पना और वास्तविक का मणिकांचन संयोग मिलता है, जो उनके सौन्दर्य तत्व की वृद्धि में सहायक होते हैं। पंत, प्रसाद, निराला व महादेवी वर्मा जी की रचनाएँ स्वच्छन्द भाव भूमि से प्रेरित होते हुए भी अन्य प्रवृत्तियों के प्रति झुकाव दिखता है; फिर भी इन कवियों ने स्वच्छन्दतावाद को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन कवियों के पश्चात् रामधारी सिंह दिनकर, हरिवंशराय बच्चन, नरेन्द्र आदि कवियों ने छायावादी भूमि को स्वीकार करते हुए नए आयाम प्रस्तुत की। ''हरिवंशराय बच्चन नव स्वच्छन्दतावादी गीति रचना के एक प्रमुख स्तंभ माने जाते हैं, जिन्होंने हालावाद का प्रवर्तन कर काव्य की नवीन एवं स्वछन्द भंगिमाओं को प्रस्तुत किया।''[30]

स्वच्छन्दतावादी कवि अपनी सहज अवस्था में स्वच्छन्द होते हुए युग के सच्चे कवि होते हैं।

संदर्भ–सूची :–

1. स्वच्छन्दतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 50।
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास सं.डॉ. सुशील त्रिवेदी, पृ. 134।
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास सं.डॉ. सुशील त्रिवेदी, पृ. 134।
4. स्वच्छन्दतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 51।
5. स्वच्छन्दतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 51।
6. स्वच्छन्दतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 51।
7. स्वच्छन्दतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 8।

8. स्वच्छन्दतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 89।
9. स्वच्छन्दतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 91।
10. हिन्दी साहित्य का इतिहास डॉ. नगेन्द्र, पृ. 484।
11. हिन्दी साहित्य का इतिहास डॉ. नगेन्द्र, पृ. 484।
12. हिन्दी साहित्य का इतिहास सं.डॉ. सुशील त्रिवेदी, पृ. 135।
13. स्वच्छन्दतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 51।
14. स्वच्छन्दतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 10।
15. स्वच्छन्दतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 121।
16. स्वच्छन्दतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 120।
17. स्वच्छन्दतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 123।
18. स्वच्छन्दतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 123।
19. स्वच्छन्दतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 123।
20. स्वच्छन्दतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 129।
21. स्वच्छन्दतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 203।
22. स्वच्छन्दतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 162।
23. स्वच्छन्दतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 162।
24. स्वच्छन्दतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 162।
25. स्वच्छन्दतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 212।
26. स्वच्छन्दतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 234।
27. हिन्दी साहित्य का समसामाजिक साहित्य आ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ. 254।
28. हिन्दी साहित्य का समसामाजिक साहित्य आ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ. 254।
29. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ. 527।
30. हिन्दी साहित्य का इतिहास सं.डॉ. सुशील त्रिवेदी, पृ. 137।

■■

(12)

अभिव्यंजनावाद

वंदना जायसवाल

अभिव्यंजनावाद एक आधुनिकतावादी आंदोलन था, जो बीसवीं शताब्दी के आरंभ में जर्मनी से शुरू हुआ था। यद्यपि इसकी जड़ 19वीं सदी के अंतिम चरण में ही मिलने लगे थे, पर प्रथम महायुद्ध के बाद इसका विकसित रूप जर्मन साहित्य, विशेष रूप से नाटकों में मिलता है। फ्रेंक वैडकाइण्ड के 'की अवेकलिंग ऑव स्प्रिंग' तथा ऑगस्ट स्टिंडवड के 'द स्पूक सोनाटा' आदि नाटक में यह बीज रूप में मिलता है। सबसे पहले यह काव्य और चित्र कला के क्षेत्र में आया था। अभिव्यंजनावाद इटली, जर्मनी और ऑस्ट्रिया से प्रादुर्भूत प्रधानतः मध्य यूरोप की एक चित्र–मूर्ति–शैली है, जिसका प्रयोग साहित्य, नृत्य और सिनेमा के क्षेत्र में भी हुआ।

सिद्धांत के रूप में इसका साहित्यिक प्रतिपादन इटली के विचारक बेनेदितो क्रोंचे ने किया था।

अभिव्यंजनावाद का अर्थ

अभिव्यंजनावाद का सामान्य अर्थ है– प्रकट करना या रूप देना। प्रचलित अर्थ में अभिव्यक्ति तथा अभिव्यंजना का एक ही अर्थ है। शुक्ल जी सम्पूर्ण दृश्य–जगत को ब्रह्म की अभिव्यक्ति मानते हैं। काव्य इसी अभिव्यक्ति की अभिव्यक्ति है। इसी प्रकार जीवन को जगत से जोडने का कार्य अभिव्यंजना है।

---

* जन्मतिथि : 14 सितम्बर 1987, माता : श्रीमति जीवित बाई डनसेना, पिता : स्व. श्री पुरूषोत्तम लाल डनसेना, पति : श्री जगमोहन जायसवाल, जन्म स्थान – सोण्डका, योग्यता : बी. एस–सी., बी. एड., एम. ए. (हिन्दी), नेट, सेट, पी–एच. डी. अध्ययनरत, सम्प्रति : व्याख्याता (हिन्दी), शा. उच्च. मा. वि. मंद्रागोढ़ी, विकास खण्ड– सक्ती, जिला – जांजगीर चांपा (छ.ग.), संपर्क : 7000483119, 9098132346, मेल आई डी : vdjjaiswal@gmail.com

डॉ. प्रतापनारायण टंडन के अनुसार, "एक्सप्रेशन का अर्थ या तो किसी आंतरिक तथ्य का ब्रह्मकार, प्रगट करना, स्पष्ट करना, प्रतिनिधित्व करना या सामान्य रूप से एक वस्तु द्वारा दूसरी की ओर संकेत करना होता है।"

अभिव्यंजनावाद या एक्सप्रेसनिज्म कलात्मक अभिव्यक्ति के स्वरूप को कहते हैं, जो किसी परिस्थिति के मूल आवेग की ब्रह्मकृति को स्पष्ट करने का प्रयत्न करती है।

अभिव्यंजना के प्रधानतः तीन प्रकार हैं–

1. विरूपित यद्यपि सवर्थ अमूर्त नहीं,
2. अमूर्त,
3. नव वस्तुवादी।

पहले वर्ग के प्रधान कलाकारों में किचर्नर नोल्ड़, पेरस्टीन मूलर; द्वितीय वर्ग के प्रधान कलाकरों में मार्क, कांडिसाकी, क्ली, जालेंएकी तथा तृतीय वर्ग के प्रधान कलाकारों मे ओटो, डिक्स, जार्ज ग्रोत्स आते हैं। जर्मनी से बाहर के अभिव्यंजनावादियों में प्रधान रूमाल सुतें और एदवार मंक है।

यह आंदोलन इटली में भविष्यवाद (फ्यूच्यूरिस्ट) और क्रांतिपूर्व रूप में "क्यूबो फ्यूचरिजम" कहलाया। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग फ्रांसिसी चित्रकार हेव ने 1901 में किया, इसे आस्ट्रिया के लेखक हेरमाल बाहर ने 1914 ई. में साहित्यालोचना में प्रयुक्त किया।

अभिव्यंजनावादी बेजान चीजों को जिंदा बनाकर बुलाते थे। जैसे– लालटेन की बातचीत, घाट का बोलना आदि। उन्हें जीवन के वर्तमान में बेहद असंतोष होता है। जीवन को वे मृत मानकर चलते हैं और मृत को जीवित बनाने का यत्न करते हैं। कुछ लोग अंध आवेग पर जोर देते हैं, तो कुछ और बौद्धिकता पर; कुछ लेखकों ने मानव और प्रकृति की समस्या को प्रधानता दी, तो कुछ ने मानव और परमेश्वर की समस्या को। जर्मनी में हिटलर के उदय के साथ कुछ विभिन्न अभिव्यंजनावादी लेखक (जैसे– अर्नस्ट टालर) निष्कासित कर दिए गए, तो कुछ लेखक (जैसे– जोहर्ट, हैनिक, लेर्श) नात्सी बन गए।

क्रोंचे का अभिव्यंजनावाद

पाश्चात्य काव्यशास्त्र में अभिव्यंजनावाद एक मील का पत्थर साबित

होता है और बेनेदेतो क्रोंचे (1866–1952 ई.) उसके शालाका पुरूष। इटली के एक प्रसिद्ध विद्वान ने 20वीं सदी में "अभिव्यंजनावाद सिद्धांत" का प्रवर्तन किया, जो अपने आप में ऐतिहासिक महत्व रखता है। बेनेदेतो क्रोंचे की अक्षय कीर्ति का आधार 1902 ई. में रचित उनकी कृति "एस्थेटिक" (Aesthetic) है, जिसके प्रथम भाग में सौंदर्य शास्त्र का सैद्धांतिक विवेचन और द्वितीय भाग मे सौंदर्य शास्त्र का इतिहास निरूपित किया गया है। 1900 ई. में क्रोंचे ने एक सेमिनार (एकैडमिया पौन्नानि आना) में "फंडामेंटल थीसिस ऑफ एन एस्बेटिक एज साइंस ऑफ एक्सप्रेशन एण्ड जनरल लिंग्विस्टिक" (Fundamental thesis of aesthetic theory as science of expression and general linguistics) शीर्षक से एक पर्चा पढ़ा था, जिसके फलस्वरूप अभिव्यंजनावाद सिद्धांत का सूत्रपात हुआ और साहित्य जगत में "एस्थेटिक" शीर्षक से एक विश्व विख्यात कृति सामने आयी।

बेनेदेतो क्रोंचे मूलतः आत्मवादी दार्शनिक है। उनका उद्देश्य साहित्य में आत्मा की अंतः सत्ता स्थापित करना था। इससे पूर्व 'काण्ट' मन और ब्रह्म जगत के तादात्म्य तथा समन्वय का प्रतिपादन करते हुए दृश्य जगत की उपेक्षा की और 'हीगेल' ने 'काण्ट' की मान्यता स्वीकार करते हुए दृश्य जगत को महत्व प्रदान किया। इसके विपरीत क्रोंचे ने केवल मानसिक प्रक्रिया को ही महत्व दिया है। उनकी दृष्टि में बाह्य उपकरण, साधन मात्र हैं। क्रोंचे, अभिव्यंजनावाद को कला मानते हैं। सहानुभूति, अभिव्यंजना का रूप होती है। सहजानुभूति का अर्थ है– अभिव्यक्ति न कम, न अधिक। अंतर जगत में जब संवेदना मूर्तित हो जाती है, तब वह अभिव्यक्त हो उठती है। उसके शब्द और रंग, रेखा में रूपायित होना जरूरी नहीं। अतः हम कह सकते हैं कि क्रोंचे की दृष्टि में अभिव्यंजना एक आध्यात्मिक क्रिया है। कलात्मक अभिव्यंजना ही अभिव्यंजना है।

सौंदर्य ज्ञान की व्याख्या करते हुए क्रोंचे ने कलात्मक निर्माण की चार श्रेणियाँ स्थिर की हैं–

1. अंतः संस्कार (Impression)– किसी वस्तु को देखने पर दृष्टा के चित्त पर जो संस्कार पड़ते हैं, वह अंतः संस्कार हैं।

2. अभिव्यंजना (Expression)– इन संस्कारों के जागृत होने पर मन–ही–मन इनकी आंतरिक अभिव्यक्ति होने लगती है।

3. आनुसंगिक आनंद (Pleasure)– दृष्टा के मन में सौंदर्य बोध से एक प्रकार के आनंद की उत्पत्ति होती है।

4. अभिव्यक्ति (Translated Beauty)– इसमें अभिव्यंजना आंतरिक न रहकर शब्दों आदि के माध्यम से स्थूल रूप में अभिव्यक्त होती है। किंतु आंतरिक अभिव्यक्ति को ही क्रोंचे ने सच्ची अभिव्यंजना मानकर सार्वधिक महत्व दिया है। "Beauty is successful expression or better expression and nothing more, because expression when it is not successful, is no expression."

अभिव्यंजनावाद की प्रमुख विशेषताएँ

क्रोंचे के अभिव्यंजनावाद सिद्धांत की मान्यताएँ निम्न हैं–

1. कला सहानुभूति है तथा सहानुभूति ही अभिव्यंजना है। अभिव्यंजना सिद्धांत कलावाद, बिम्बवाद, प्रभाववाद आदि का प्रेरक है।
2. अभिव्यंजना स्वयं प्रकाश ज्ञान (Intuition) है। यह एक मानसिक क्रिया और एक आध्यात्मिक आवश्यकता है।
3. अभिव्यंजना अखण्ड है और उसे विभिन्न वर्गों में वर्गीकृत नहीं किया जा सकता है।
4. अभिव्यंजना से आनंद की अनुभूति होती है।
5. सौंदर्य सफल अभिव्यंजना है। अभिव्यंजना कला या काव्य की सौंदर्य–दृष्टि है।
6. अभिव्यंजना पूर्णतः आंतरिक होती है बाह्य नहीं। कला का सृजन की नहीं, अपितु आस्वादन भी वैयक्तिक स्तर पर होता है।
7. कला, कला के लिए है। कला का कोई प्रयोजन या उद्‌देश्य नहीं होता है। कला के संदर्भ में अच्छे, बुरे, नैतिक–अनैतिक का प्रश्न ही नहीं उठता है।
8. कला केवल रूप है, वस्तु नहीं। अलंकरण कला का सहज धर्म है। क्रोंचे के अनुसार अमूर्त कला नैतिक बंधनों से मुक्त होती है। कला अखण्ड है।

9. सामान्य व्यक्ति और कलाकार की सहजानुभूति एक समान होती है। उसमें अगर अंतर होता है, तो परिणाम का, गुण का नहीं।

क्रोंचे की दृष्टि में सहजानुभूति ही अभिव्यंजना (Expression) है। सहजानुभूति ज्ञान ही अभिव्यंजनात्मक ज्ञान है और मानस के अंदर सहजानुभूत प्रभावों की अभिव्यंजना ही कला है। क्रोंचे के अनुसाार, कलाकार (कवि) की सहजानुभूति की क्षमता अर्थात् आंतरिक अभिव्यंजना की क्षमता (सुंदर रूपात्मक कला, बिम्बात्मक कला आदि) अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। क्रोंचे सहज ज्ञान को प्रभाव (Imopression) तथा संवेदना (Sensation) से भिन्न मानते हुए अभिव्यंजना को स्वयं प्रकाश ज्ञान (Intuition) कहते हैं। क्रोंचे का स्पष्ट मत है कि कल्पना युक्त स्वयं प्रकाश ज्ञान (आंतरिक अभिव्यंजना अथवा कला रूप सहजानुभूति), आध्यात्मिक क्रिया (Spiritual Activity) का स्वाभाविक परिणाम है। इनकी दृष्टि में अभिव्यंजनावाद अखण्ड है। इसका वर्गीकरण या खण्डीकरण नहीं किया जा सकता। क्रोंचे का मत है कि सहज ज्ञान वास्तव में भावात्मक ज्ञान है और कला भावाभिव्यक्ति भावानुभूति मात्र नहीं, बल्कि अनुभूति का कल्पागत या स्मृत रूप होने के कारण यह अभिव्यंजना की पूर्णतया अखण्ड रूप होती है। क्रोंचे की मान्यता है कि सुंदर कृतियों की कोटियाँ नही होतीं, असुंदर की ही कोटियाँ होती हैं। अभिव्यंजना कला या काव्य एक सौंदर्य दृष्टि है। अभिव्यंजना आंनद की अनुभूति का विषय है। सौंदर्य सफल अभिव्यंजना या केवल अभिव्यंजना है, क्योंकि जो सफल नहीं है, वह अभिव्यंजना नहीं है। डॉ. सावित्री सिन्हा की 'सहजानुभूति', पं. रामचंद्र शुक्ल की 'मुक्तावस्था' के निकट है। शुक्ल जी ने माना है कि कविता की रचना करते समय पाठक हृदय की मुक्तावस्था को प्राप्त करतें हैं। संक्षेप में मुक्तावस्था का अर्थ हुआ– हृदय की व्यापकता और आनन्दोपलब्धि।"

यहाँ हम कह सकते हैं कि कलाकार या व्यक्ति सहजानुभूति की स्थिति में अपनी सीमाओं को भूल जाता है और उसकी अनुभूति इतनी प्रखर हो उठती है कि वह एकाग्र होने के कारण आनंद की उपलब्धि करता है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. एच. कार्टर, दि न्यू स्पिरिट इन दि यूरोपियन थियेटर (1914–24)।
2. आर. सैमुअल एण्ड आर. एच. थामस, एक्स्प्रेशन इन जर्मन लाइफ,

लिटरेचर एण्ड दि थियेटर (1910–1924)।
3. लक्ष्मीनारायण सुधांशु, काव्य में अभिव्यंजनावाद।
4. भागीरथ मिश्र, काव्य शास्त्र।
5. सभापति मिश्र, साहित्य शास्त्र और हिन्दी आलोचना।
6. देवेन्द्र नाथ शर्मा, डॉ. गंगा सहाय प्रेमी व डॉ. त्रिलोकी नाथ श्रीवास्तव; पाश्चात्य काव्य शास्त्र।
7. डॉ. रामचंद्र तिवारी, भारतीय व पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा हिन्दी आलोचना।
8. डॉ. ज्ञानराज गायकवाड़, पाश्चात्य काव्य सिद्धांत।
9. डॉ. कृष्णदेव शर्मा, पाश्चात्य काव्य शास्त्र।
10. डॉ. विवेक शंकर, पाश्चात्य काव्य शास्त्र।

■■

(13)

मार्क्सवाद

वंदना जायसवाल

मानव समाज जिस किसी भी अवस्था या व्यवस्था में रहा हो, उसके सम्मुख कुछ सिद्धांत, नियम और आदर्श सदा रहे हैं। मानव समाज की परिस्थिति और अवस्था बदलने से उसकी व्यवस्था, सिद्धांतों, नियमों और आदर्शों में भी परिवर्तन होता रहा है। शुरू में मानव समाज एक अलौकिक शक्ति की आज्ञा और इच्छा को सामाजिक व्यवस्था का आदर्श मानकर चलता था, परंतु इसके बाद भी मानव अपनी सामाजिक व्यवस्था से पूर्णतः संतुष्ट न हो सका और उसे पूरा करने के उपाय की खोज ही मानव समाज को परिवर्तन और विकास के पथ पर आगे बढ़ाती रही है। मनुष्य दूसरे जीवों की अपेक्षा अधिक शक्ति और साधन सम्पन्न होने से दूसरे जीवों को अपने लाभ के लिए उपयोग करने का अवसर पाता है।

मार्क्सवाद क्या है ?

मार्क्सवाद किसी युग की सबसे क्रांतिकारी विचारधारा है। उदारवाद, आदर्शवाद और मार्क्सवाद राजनीति विज्ञान की तीन महत्वपूर्ण सिद्धांत हैं। जैविक विचारधारा आदर्शवाद है, यांत्रिक विचारधारा उदारवाद है तथा वर्ग की विचारधारा मार्क्सवाद है। मार्क्सवाद विचारों के उस भाग को प्रकट करता है, जो मुख्य रूप से कार्ल मार्क्स के विचारों को समाहित करते हैं। मार्क्सवाद एक जीवन दर्शन है, जिसे कार्ल मार्क्स की मृत्यु के बाद भी

---

* जन्मतिथि : 14 सितम्बर 1987, माता : श्रीमति जीवित बाई डनसेना, पिता : स्व. श्री पुरूषोत्तम लाल डनसेना, पति : श्री जगमोहन जायसवाल, जन्म स्थान – सोण्डका, योग्यता : बी. एस–सी., बी. एड., एम. ए. (हिन्दी), नेट, सेट, पी–एच. डी. अध्ययनरत, सम्प्रति : व्याख्याता (हिन्दी), शा. उच्च. मा. वि. मंद्रागोढ़ी, विकास खण्ड– सक्ती, जिला – जांजगीर चांपा (छ.ग.), संपर्क : 7000483119, 9098132346, मेल आई डी : vdjjaiswal@gmail.com

मार्क्सवादी विचारकों ने जीवित रखा। यह विचारधारा कार्लमार्क्स के जन्म से पहले भी अस्तित्व में था। अतः मार्क्सवाद केवल कार्लमार्क्स के विचार नहीं है।

मार्क्सवाद पर डेविड मैक्लेलन ने तीन किताबें लिखी– 1. मार्कसिज्म बिफोर मार्क्स, 2. थॉट आफॅ मार्क्स तथा 3. मार्कसिज्म आफ्टर मार्क्स। इसी प्रकार लेसजेक कोलाकोस्की ने भी मार्क्सवाद पर 3 किताबें लिखी है। मार्क्स के पहले यह विचारधारा समाजवादी विचारकों के रूप में जाना जाता था, जिसे मार्क्स ने काल्पनिक समाजवादी कहा, क्योंकि एक दोषरहित सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक प्रणाली का अस्तित्व कल्पना ही प्रतीत होता है। प्रमुख काल्पनिक समाजवादी विचारकों में– रॉबर्ट ओवेन, चार्ल्स फूरियर, लुइस ब्लां सेंट साइमन, सिसमोरी प्रमुख है। मार्क्सवादी आलोचना के प्रमुख समीक्षक लुकाच, लेलीन, मावो–त्से,–तुंग, ग्रामसी कार्डवेल, जार्ज थाम्सन, आर्नेस्ट, फीसर, ब्रेख्त, ब्लाख, बेंजामीन, गोल्डमन एडार्नो आदि हैं।

प्रवर्तक – कार्ल हेनरिक मार्क्स (karl Heinrich Marx)

05 मई 1818 ई. में ट्रेयर जर्मनी के एक यहूदी परिवार में इनका जन्म हुआ। इनके पिता हरशेल मार्क्स वकील थे व माँ हैनिरीटा प्रेसबर्ग घरेलू महिला थी। सन् 1824 ई. में इनके परिवार ने इसाई धर्म स्वीकार किया। मार्क्स सन् 1835 में कानून के अध्ययन के लिए बॉन विश्वविद्यालय में प्रवेश लिए। इसके बाद मार्क्स ने बर्लिन विश्वविद्यालय एवं जेना विश्वविद्यालय में साहित्य, इतिहास और दर्शन का अध्ययन किया। उन्होंने धर्म को अफीम कहा। सन् 1839–41 में इन्होंने डीमोक्रेट्स एण्ड एपीक्यूरस के प्राकृतिक दर्शन पर शोध प्रबंध लिखकर अपनी पी.एच.डी. पूरी करके डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। इनका 1833 में जेनी से प्रेम विवाह एवं 1844 में सबसे प्रिय मित्र, जर्मन के दूसरे विद्वान फ्रेडरिक एंगेल्स से परिचय हुआ। अपने क्रांतिकारी विचारों के कारण मार्क्स को जीवन में कभी चैन से रहने का अवसर न मिला। एक के बाद एक जर्मनी, फ्रांस, बेल्जियम आदि सभी देशों से ये निकाल दिए गए। 34 बरस उन्होंने इंग्लैण्ड में बिताए। कभी भी, अपने गुजारे के लिए पर्याप्त धन कमाने को महत्व नही दिए। जब पैसे मिलते थे, तब अपने शौक पूरा कर लेते थे। बाकि दिनों भूखे पेट ही किताबें लिखा करते थे। कई बार ब्रिटिश म्युजियमों के पुस्तकालयों में पुस्तकों के लिए

नोट लिखते समय भूख, कमजोरी और अधिक श्रम से बेहोश हो जाते थे। अपनी बीमार लड़की की ईलाज के लिए उनके पास पैसे नहीं थे, वे उसे नहीं बचा सके। उनके व्यवहार में चिड़चिड़ाहटपन बढ़ गई थी, वे जेनी से बात–बात पर झगड़ पड़ते थे। पर जेनी को विश्वास था कि उनका परिवार चाहे जो मुसीबत भुगते, पर उनके पति जिस महान कार्य की नींव डाल रहे हैं, वह एक दिन संसार के पीड़ितों के दुख दूर करने का साधन बनेगा। 1859 में मार्क्स ने अपने अर्थशास्त्रीय अध्ययन के निष्कर्ष को "ए कान्ट्रीब्यूशन टू क्रिटिकल ऑफ पालिटिशन एकॉनामी" नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया। यह किताब उनकी दीर्घकालीक योजनाओं की शुरूआत थी। फरवरी 1848 में 'कम्युनिष्ट मैनीफेस्टो' का प्रकाशन हुआ। 1881 में पत्नी के देहान्त पर मार्क्स अत्यधिक दुःखी हो गया। उस समय मित्र एंगेल्स ने कहा था, "मार्क्स मर गया"। 14 मार्च सन् 1884 को मार्क्स इस संसार से पार हो चले। उनकी मृत्यु के बाद एंगेल्स ने 'पूंजी' (Das Capital) के तीसरे भाग को पूरा करके छपवा दिया। यही किताब मार्क्सवाद या कम्युनिज्म (Communism) की आधारशिला है।

कार्ल मार्क्स की प्रमुख रचनाएँ

1. कम्युनिष्ट पार्टी का घोषणा पत्र (महत्वपूर्ण रचना)।
2. दास कैपिटल (महत्वपूर्ण रचना)।
3. Poverty of Philosopy (1847).
4. The Critique of Political Economy (1859).
5. Inaugural Address to the International working Men Association (1864).
6. Value, Price and Profit (1865).
7. The Civil War in France (1870 - 71).
8. The Gotha Programme (1875).
9. Class – Struggle in France (1848).
10. The German Ideology, The Holy family आदि।

मार्क्सवाद के बुनियादी सिद्धांत

मार्क्सवाद के 6 बुनियादी सिद्धांत हैं–

1. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद,
2. ऐतिहासिक भौतिकवाद,
3. अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत,
4. वर्ग संघर्ष,
5. सर्वाहारा वर्ग का अधिनायकत्व,
6. साम्यवाद।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, इतिहास की व्याख्या के लिए कार्ल मार्क्स और एंगेल्स द्वारा विकसित वैज्ञानिक विधि है। यह जर्मन दार्शनिक हेगेल से पूरी तरह प्रभावित है। हेगेल के संवाद, प्रतिसंवाद तथा संश्लेषण के तीनो रूपों को विकसित करके इसे पेश किया गया है। प्रगति या विकास द्वन्द्वात्मक प्रकिया से हेाता है। संवाद, प्रतिसंवाद और संश्लेषण की प्रक्रिया तब तक चलती है, जब तक यह पूर्णतः की अवस्था तक नही पहुँच जाती। द्वन्द्वात्मक प्रकिया का अंत पूर्ण सत्य पर पहुँचने के बाद ही होता है। यह विरोधाभास है, जो द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया को बढ़ाता है और विरोधाभास का पूरा विनाश अपने आप से द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया के अंत को सूचित करता है।

मार्क्स की टिप्पणी है, "हेगेल का द्वन्द्वात्मक अपने सिर के बल खड़ा था और मैंने उसे पैरों के बल खड़ा किया है। हेगेल का विचार नीचे की ओर झुका हुआ था और मैंने उसे ठीक किया है।"

ऐतिहासिक भौतिकवाद

यह द्वन्द्वात्मक के भौतिकवाद की मार्क्सवादी विधि को लागू करने में विश्व इतिहास की आर्थिक व्याख्या करता है। विश्व इतिहास को चार भांगों में बाँटते हैं– (अ) प्रारंभिक साम्यवाद, (ब) दास प्रथा, (स) सामंतवाद और (द) पूँजीवाद।

प्रारंभिक साम्यवाद, मानव इतिहास के सबसे प्रारंभिक काल लगभग पाषाण काल को सूचित करता है, तब तकनीकी अविकसित थी। मानव वन के फलों, पशुओं के मांस पर जीवन निर्वाह करता था। यह काल संपत्ति

विहीन, शोषण विहिन, वर्गविहिन और राज्य विहिन समाज का काल था। उत्पादन और उपभोग सीमित थे। अतः वर्ग संघर्ष नगण्य था। शोषण, कलह और संघर्ष के अभाव में भी, तब जीवन कठिन था। धीरे–धीरे उत्पादन पर निजी स्वामित्व हावी होने लगा। कुछ व्यक्तियों का बहुत बड़े परिमाण में पैदावार के साधनों का मालिक बन जाना और दूसरे व्यक्तियों का इन साधनों से हीन हो जाना समाज में असमानता की नींव है। साधनों के विकास के साथ असमानता बढ़ती ही चली गई और समाज साधन सम्पन्न और साधनहीन दो वर्गों में बंट गया तथा पहला वर्ग दूसरे वर्ग का शोषण करने लगा। इस असमानता के परिणामस्परूप दास प्रथा प्रचलन में आई। सम्पन्नता और शक्ति का सबसे बड़ा साधन 'दासों की संख्या' बन गई। स्वामी और गुलाम दो वर्गों में समाज बंट गया। चूंकि असमानता संघर्ष को जन्म देती है, जिसके कारण सम्पत्ति वाला प्रभावी वर्ग राज्य नाम की एक दमनकारी संस्था का निर्माण करतें है। यह राज्य अधीनस्थ अर्थात् संपत्तिहीन वर्ग के विरोध को कुचलता है। इस तरह राज्य एक दमनकारी संस्था के रूप में एक वर्ग तंत्र है, जो अपने ऐसे निर्माता के हितों की रक्षा करता है, जो साधन सम्पन्न हैं। यह अपनी दमनकारी शक्तियों से गुलामों की आवाज को दबाता है। तकनीकी विकास, उत्पादन के साधनों में परिवर्तन लाता है और यह उत्दान और श्रेष्ठ संरचना के संबंध में अनुकूल परिवर्तन लाता है। समाज का सामंतों और किसानों में विभाजित हो जाना सामंतवाद को दर्शाता है। सामंत परजीवी के समान होता है, जो किसानों की मेहनत पर सम्पन्न होता है। पूँजीवाद, सामन्तवाद का अनुगामी होता है। सर्वाहारा वर्ग उत्पादनकर्ता है, पर वह स्वयं के लिए नही होता, बल्कि मुनाफे के लिए होता है। अधिकतम मुनाफे की इच्छा वेतन में कमी और कार्यावधि में बढोतरी करती है, जो आगे सर्वाहारा क्रांति के लिए मार्ग प्रशस्त करता है।

अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत

मार्क्स ने अपनी किताब 'दास कैपिटल' में इसका विस्तृत विवेचन किया है। यहाँ मार्क्स वर्गीय अर्थशास्त्रियों के सिद्धांतों से प्रभावित थे। सामान का मूल्य उसके उत्पादन में लगे श्रम से आंका जाता है। श्रम भी एक सामान है। इसे भी खरीदा बेचा जा सकता है। उत्पादन के चार कारकों मे श्रम सबसे सर्वोच्च है। यदि वेतन श्रमिक द्वारा उत्पन्न की गई रकम के

अनुपात में होगा, तो कोई शोषण नहीं होगा। लेकिन पूँजीवाद में यह अवस्था नहीं होती है। पूँजीवाद में गहन प्रतियोगिता सर्वहारा की अति क्षति का सूचक होती है। यह वर्ग संघर्ष को बढ़ावा देती है और अंततः क्रांति लाती है।

वर्ग संघर्ष

मार्क्स के अनुसार अभी तक के सभी समाजों का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास रहा है। दास प्रथा में स्वामी और दास, सामंतवादी प्रथा में सामन्त और मध्यम वर्ग उत्पादन के साधनों के स्वामी होते हैं, सर्वाहारा वर्ग उत्पादन कर्ता होते हैं। सम्पत्ति वाले वर्ग, सम्पत्ति विहीन वर्ग का शोषण करते हैं और यही वर्ग संघर्ष का मुख्य श्रोत और कारण है। मार्क्स ने वर्ग संघर्ष की पहली शोषक संस्था परिवार को माना। वर्ग संघर्ष क्रांति के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। वर्ग संघर्ष अतींद्रिय होता है, लेकिन क्रांति अनुभवगम्य होती है। क्रांति थोड़े समय के लिए तेजी से और हिंसात्मक होती है। मार्क्स के शब्दों में, ''क्रांति सामाजिक परिवर्तन की आवश्यक दायी होती है।''

सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व

सर्वहारा क्रांति सर्वहारा के अधिनायकत्व की स्थापना करेगी। यह समाजवादी राज्य के नाम से भी जाना जाता है। मार्क्स ने धर्म को अफीम कहा है, जिसके नशे में मनुष्य ऊंघता रहता है।

मार्क्स ने कहा, "मजदूरों का कोई देश नहीं होता, इसलिए विश्व के मजदूरों, एक हो जाओ।" राज्य हमेशा दमन का साधन रहा है। वह हमेशा अपने निर्माता साधन संपत्ति सम्पन्न वर्ग के हितों का रक्षक रहता है। मार्क्स के अनुसार सभी राज्य अधिनायक रहे हैं, अतः समाजवादी राज्य कोई अपवाद नहीं है। समाजवादी राज्य में सर्वहारा वर्ग राज्य के दमनकारी अंगों जैसे– न्याय व्यवस्था, सेना, पुलिस आदि का प्रयोग मध्यम वर्ग के विरूद्ध होगा। यदि प्रजातंत्र का मतलब बहुसंख्यक का शासन होता है, तो सर्वहारा राज्य सबसे प्रजातांत्रिक राज्य है। सर्वहारा राज्य के पहले सत्ता बहुसंख्यक के हाथों में आती है, किंतु सत्ता सदैव अल्पसंख्यकों के हाथों मे रही है, अतः यदि बहुमत का शासन मानदण्ड है, तो मात्र सर्वहारा राज्य ही प्रजातांत्रिक राज्य कहा जा सकता है।

साम्यवाद

साम्यवाद एक वर्गविहीन, निजी संपत्ति विहीन और शोषण विहीन राज्य होगा। यह सामाजिक उन्नति का काल सिद्ध होगा, जिसकी स्थापना के बाद, आगे न तो कोई सामाजिक परिवर्तन होगा, न कोई द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया होगी, न तो किसी का शोषण होगा, न कोई वर्ग विभाजन। राज्य की कोई आवश्यकता नहीं रह जाएगी और यह धीरे–धीरे विलीन हो जाएगा। उत्पादन खपत के लिए होगा, मुनाफे के लिए नहीं। इसलिए संघर्ष और शोषण के लिए कोई जगह नहीं रह जाएगी। केवल श्रमिकों का एक वर्ग होगा।

साम्यवादी समाज हेतु लुईस ब्लां ;स्वनपेम इसंदमद्ध के सिद्धात के अनुसार, "प्रत्येक अपनी क्षमता के अनुसार कार्य करेंगें और प्रत्येक को अपनी आवश्यकता के अनुसार प्राप्ति होगी।"

मार्क्सवाद का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव

हिन्दी आलोचना में भी मार्क्सवादी साहित्येतिहास चिंतन की परंपरा मिलती है। इनमें शिवदान सिंह चौहान, रांगेय राघव, प्रकाश चंद गुप्त, रामविलास शर्मा, नामवर सिंह, मैनेजर पाण्डेय आदि प्रमुख हैं। इन्होंने मार्क्सवादी इतिहास दृष्टि के अनुरूप हिन्दी साहित्य पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। हालांकि मार्क्सवाद के अन्य क्षेत्रों की तरह हिन्दी के इन विचारकों के बीच भी गंभीर मतभेद है। हिन्दी साहित्य पर मार्क्सवाद का प्रभाव प्रगतिवाद के अंतर्गत देखने को मिलता है। हिन्दी आलोचना पर मार्क्सवाद का खासा प्रभाव पड़ा है।

मार्क्स और एंगेल्स ने साहित्य तथा कला संबंधी कोई पुस्तक नहीं लिखी। "साहित्य और कला पुस्तक में उनके साहित्य की स्वायत्ता संबंधी विचारों का उल्लेख करते हुए लिखा गया है कि मार्क्स और एंगेल्स ने कभी भी मानवीय गतिविधि के विशिष्ट क्षेत्रों (विधि, विज्ञान, कला आदि) के विकास में मौजूद सापेक्ष स्वायत्ता का निषेध या गलत निरूपण नहीं किया।" मार्क्सवादी सौंदर्य शास्त्र यथार्थ को अपने कला सिद्धांत का शिखर मानते हैं। इस यथार्थ के स्वरूप पर विचार करते हुए 'साहित्य और कला' में लिखा गया है कि "यह यथार्थ न तो महज बाह्य जगत के सीधे इन्द्रिगम्य रूपों से बना है और न ही आकस्मिक और क्षणिक तथ्यों से।"

प्रगतिवाद : मार्क्सवाद की देन

राजनीति में जो मार्क्सवाद है, साहित्य में वही प्रगतिवाद है। अर्थात् हिन्दी की प्रगतिवादी कविता मार्क्सवाद से प्रभावित है। साम्यवादी विचारधारा का पोषण करने वाली रचनाएँ प्रगतिवादी रचनाएँ कही गयीं।

- 1935 ई. में पेरिस प्रोगेशिव इंटर्स एशोसिएसन की स्थापना हुई, जिसकी एक शाखा की स्थापना सज्जाद और मुल्कराज आनंद के प्रयासों से भारत में हुआ था।
- हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद का आरंभ 1936 ई. में हुआ था और इसी वर्ष लखनऊ में प्रगतिशील लेखक संघ का सम्मेलन हुआ, जिसकी अध्यक्षता उपन्यास सम्राट प्रेमचंद ने की थी।
- पंत ने 'युगान्त' काव्य संग्रह के माध्यम से छायावाद के अंत और प्रगतिवाद के आरंभ का शंख फूंक दिया था।
- पंत की कविता 'परिवर्तन' यथार्थ की कठोर धरातल है, तो निराला की कविता 'तोड़ती पत्थर' मजदूर वर्ग को एक अमूल्य उपहार है। ताजमहल पर तंज कसती नवीन मार्क्सवादी दृष्टिकोण के साथ प्रस्तुत पंत की कविता 'ताज' साहित्य की धरोहर है।
- पंत, निराला, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, रामविलास शर्मा, नामवर सिंह, शिव कुमार मिश्र, आदि प्रगतिवादी विचारधारा के प्रमुख लेखक हैं।
- महान आलोचक रामविलास शर्मा ने भारतीय संदर्भ में मार्क्सवाद की सबसे सटीक व्याख्या की है। उन्हें हिन्दी साहित्य की प्रगतिवादी (मार्क्सवादी) आलोचना का 'पितामह' कहा जाता है। वे मानते थे कि साहित्य केवल क्रांति के लिए होता है, आनंद के लिए नहीं। उन्होंने भारत के संदर्भ में मजदूरों के अलावा किसानों को भी क्रांति का सिपाही बताया था।
- प्रतिबद्ध मार्क्सवादी आलोचक शिव कुमार मिश्र ने लिखा है, "मार्क्सवादी समीक्षकों के रस सिद्धांत से मूल मतभेद उसका भाववादी चिंतन, उसकी दार्शनिक परिणति और उसकी लोकोत्तर व्याख्या से है। काव्यानुभूति और काव्यास्वाद के मानवीय धरातल पर उनकी अनेक

निष्पत्तियाँ मार्क्सवादी विचारकों को स्वीकार है। यही बात साधारणीकरण के लिए भी सत्य है।"

- डॉ. रामविलास शर्मा मार्क्सवादी दृष्टि से भारतीय संदर्भों का मूल्यांकन करते हैं, लेकिन वे इन मूल्यों पर स्वयं तो गौरव करते ही हैं, साथ ही पाठकों को निरंतर बताते हैं कि भाषा और साहित्य तथा चिंतन की दृष्टि से भारत अत्यंत प्राचीन राष्ट्र है। वे अंग्रेजों द्वारा लिखवाए गए भारतीय इतिहास को एक षड़यंत्र मानते हैं।
- डॉ. शर्मा के साहित्य के संबंध में मान्यताएँ या तो मौलिक है या सामान्य प्रगतिवादियों से अलग है। वे साहित्य को भाषा, संस्कृति, अर्थव्यवस्था, समाज और भौगोलिक परिवेश से बनने वाली जातीयता से जोड़कर देखते हैं। निराला की महानता को स्पष्ट करते हुए उनकी जन्मजात प्रतिभा को स्वीकार करते हैं और प्रगतिशील आंदोलन में प्रेम की संभावना को घोषित रूप से स्वीकृति देते हुए कहते हैं कि प्रेम और प्रगतिशील विचारधारा में कोई आंतरिक विरोध नहीं है।
- डॉ. रामविलास शर्मा जी का व्यवहारिक आलोचना का प्रस्थान बिंदु रामचंद्र शुक्ल हैं।
- डॉ. शर्मा ने प्रेमचंद, भारतेन्दु हरिश्चंद्र, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, रामचंद्र शुक्ल, महावीर प्रसाद द्विवेदी जी आदि पर पुस्तकें लिखकर हिन्दी आलोचना को समृद्ध किया है।
- आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी मार्क्सवादी समीक्षकों में एक प्रकाश स्तंभ हैं। वे निष्पक्ष आलोचना करने में सफल रहे हैं।
- निराला की 'राम की शक्ति पूजा', 'सरोज स्मृति', 'वनबेला' और 'अनामिका' को रामविलास शर्मा ने संक्रमण काल की कविता माना है।

कविता, कहानी, नाटक के साथ–साथ उपन्यासों पर भी मार्क्सवाद का प्रभाव पड़ा। मार्क्सवादी विचारधारा ने जीवन और समाज के प्रति दृष्टिकोण को बदलकर रख दिया। मार्क्सवाद पारंपरिक मूल्यों पर अविश्वास, शोषण का विरोध जैसे मुख्य स्वरों से संचालित था। पूँजीवादी विकृतियों एवं सामाजिक जड़ताओं का घोर विरोध, अमानवीय यातनाओं के हर पक्ष का उद्‌घाटन का प्रयास मार्क्सवाद की ही देन है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. एवेनेरी, श्लोमो द सोशल एण्ड पालिटिकल थॉट आफ कार्ल मार्ल मार्क्स, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी कैम्ब्रिज प्रेस।
2. बर्लिन, इजाइया, कार्ल मार्क्स : हिज लाइफ एण्ड 1971 ऐनवाइरमेंट, न्यूयार्क, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस 1966.
3. फुफुयामा, फ्रांसिस, दी एण्ड ऑफ हिस्ट्री एण्ड द लास्ट मैन, न्यूयार्क फ्री प्रेस, 1992.
4. टकर, रॉबर्ट, फिलास्फी एण्ड मिथ ऑफ मार्ल मार्क्स, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी कैम्ब्रिज, प्रेस 1961.
5. मैक्कलेलैंड, जे. एस., ए हिस्ट्री ऑफ वैस्टर्न पालिटिकल थॉट, लंदन, राऊब्लेज 1996.
6. डॉ. गोपाल जी प्रधान, मार्क्सवादी साहित्येतिहास दृष्टि।
7. प्रो. मैनेजर पाण्डेय, मार्क्स – एंगेल्स साहित्य और कला राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ 2006.
8. शिव कुमार मिश्र, मार्क्सवादी साहित्य चिंतन : इतिहास तथा सिद्धांत।
9. डॉ. रामविलास शर्मा, मार्क्स और पिछड़े हुए समाज।

■■

(15)

मनोविश्लेषणवाद

डॉ. कल्पना मिश्रा

फ्रायड आज भी मनोविज्ञान के माध्यम से आलोचना शास्त्र को प्रभावित कर रहे हैं, फ्रायड को मनोविश्लेषणवादी आलोचना का आचार्य भी कहा जाता है। युग एवं एडलर का प्रभाव भी इसमें स्वीकार किया जाता है।

फ्रायड का सैद्धान्तिक दृष्टिकोण

डॉ. सिग्मंड फ्रायड को मनोविश्लेषणशास्त्र का जन्मदाता माना जाता है और उससे प्रभावित होकर कई पाश्चात्य आलोचकों ने पाश्चात्य साहित्य के विभिन्न युगों का भी इसी मनोविश्लेषणवाद की पृष्ठ भूमि में विश्लेषण किया है। इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व साहित्यालोचन की इस पद्धति के लिए निर्विवाद रूप से फ्रायड का ऋणी है। विचारक यह भी कहते हैं कि फ्रायड आलोचना के क्षेत्र में व्यक्तिवाद के जनक हैं किन्तु उनके व्यक्तिवाद का व्यक्ति संकीर्ण मनोविकारों के किन्हीं वैयक्तिक राग–द्वोष, लोभ–क्षोभ आदि से ग्रस्त न होकर उन गुह्य ग्रंथियों के उद्‌घाटन से अभिनिर्मित है। व्यक्तित्व के संगठन में, उसके चेतन के निर्माण में इन गुह्य ग्रंथियों की एक महती भूमिका रहती है, जो उसके बहिर्चेतन के लिए उत्तरदायी है। व्यक्ति में अवचेतन मन के विश्लेषण द्वारा साहित्य, संस्कृति, धर्म आदि की नयी व्याख्या प्रस्तुत करते हुए फ्रायड ने अपने युग में व्याप्त झूठी नैतिकता तथा

---

* जन्म तिथि : 05 अगस्त 1981, पति : श्री नमित मिश्रा, योग्यता : पी–एच. डी., सम्प्रति : सहायक प्राध्यापक (हिन्दी), शासकीय दू. ब. महिला महाविद्यालय रायपुर मो. : 9753554534, मेल : kalpanamishra.prof@gmail.com

आडम्बरपूर्ण आदर्शों के थोथे को निस्सार और मिथ्या साबित कर मनोविश्लेषणवाद की आधारशिला रखी।

फ्रायड के अनुसार मानव मन चेतन एवं अवचेतन नामक दो छोरों के मध्य फैला हुआ है और इन दो छोरों के मध्य जो सुदीर्घा अंधकारमय प्रदेश है, उसका ज्ञान मनुष्य की चेतना को नहीं होता। इस मध्यवर्ती अंधकारमय प्रदेश को फ्रायड 'अचेतन' की संज्ञा प्रदान करता है। इस तीन स्तरों वाले मानव तन्त्र को वह स्थूल दृष्टि से पुनः तीन प्रवृत्तियों में विभाजित करता है और मनुष्य के सम्पूर्ण मानसिक जीवन को इदम्, अहम् एवं परम् नामक तीन सोपानों में विभक्त मानता है। इनमें से 'इदम्' में व्यक्ति की 'आनुवंशिकता' संबंधी जन्मजात गुण एवं शारीरिक लक्षणों के मूल उत्स रहते हैं और यह मन के अवचेतन स्तर पर रहने से व्यक्ति इससे अपरिचित ही रहता है, लेकिन इसे व्यक्ति की अतृप्त इच्छाओं और वासनाओं का अन्धकारमय कोष समझना चाहिए, क्योंकि यहीं से कामशक्ति की प्रेरणा उत्पन्न होती है। व्यक्ति जब बाह्य सम्पर्क में आता है, तो अनेक अनुभवों के आधार पर उसके अहम् का निर्माण होता है। अहम् व्यक्ति को नियम प्रदान करता है। अचेतन मन अवांछित इच्छाओं को पूरा करने हेतु प्रेरित करता है। इन दोनों के बीच व्यक्ति की मानसिक चेतना अवस्थित रहती है।

फ्रायड मन की दो प्रमुख वृत्तियाँ मानता है– (1) कामवृत्ति और (2) मृत्यु वृत्ति। कामशक्ति मन की कामवृत्ति से सम्बन्धित है और उसका सम्बन्ध व्यक्ति की कामुकता से होता है। साथ ही फ्रायड ने मृत्युवृत्ति को आत्महनन, ईर्ष्या एवं द्वेष की प्रवृत्तियों का संपुंजन माना है और उसका कहना है कि जिस व्यक्ति में भी मृत्युवृत्ति प्रधान रहती है, उसका जीवन अशांत होता है। परन्तु कामवृत्ति अपने परिष्कृत रूप से मानव सभ्यता और संस्कृति का नियमन भी करती है।

फ्रायड का कहना है कि हम मन के जिस अंश को स्पष्ट रूप से जानते हैं, वह सम्पूर्ण मन का बहुत थोड़ा भाग होता है और शेष मन अज्ञात, रहस्यमय, अभेद्य एवं अचेतन बना रहता है तथा इन दोनों के मध्य एक ऐसा स्तर भी होता है, जिसकी धुँधली–सी अनुभूति हमें उसी प्रकार होती है, जिस प्रकार जल में डूबे हिम खंड का कुछ भाग हमें दिखाई देता है। इसे अर्द्धचेतन मन कहा जाता है और इसके मध्य से अचेतन मन की इच्छाएँ

चेतन मन में आने का प्रयत्न करती हैं तथा वे केवल अवचेतन तक ही आ पाती हैं। जब निद्रा के समय चेतन मन निष्क्रिय हो जाता है, तब अचेतन मन की भूमिका पर ये इच्छाएँ स्वप्नों के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति करती हैं। वास्तव में अचेतन मन अविवेकशील एवं दमित इच्छाओं का शक्तिशाली पुंज है। पर जब इदम् की अनेक इच्छाएँ असामाजिक होने के कारण पूर्ण नहीं हो पाती, तब वे अचेतन की ओर मुड़ जाती हैं और अन्य दमित इच्छाओं के साथ मिलकर एक मंडल बनाने लगती हैं। चेतन एवं अचेतन मन में हमेशा संघर्ष होता है। चेतन मन व्यक्ति की असामाजिक इच्छाओं का दमन करता है। चेतन मन के धरातल पर अचेतन की सभी इच्छाएँ प्रकट नहीं होती हैं। चेतन मन कभी–कभी निषेध इच्छाओं का तीव्र रूप से दमन करता है, परिणामस्वरूप व्यक्ति मानसिक रूप से असंतुलित हो जाता है।

मनोविश्लेषणवाद के उक्त सिद्धान्तों पर ही फ्रायड का साहित्य दर्शन भी आधारित है और फ्रायड के अपने कला–चिन्तन में कामशक्ति की प्रेरणा अवस्थित है तथा व्यक्ति की दमित एवं कुण्ठित असामाजिक प्रवृत्तियाँ अपने परिशोधित रूप में कला एवं संस्कृति का निर्माण करती है। फ्रायड के अनुसार विविध कलाएँ, भौतिक एवं शारीरिक वर्जनाओं की उत्सृष्टा होती हैं।

फ्रायड कुण्ठा के उदात्तीकृत स्वरूप को कला का नियामक तत्व मानता है। उसका कहना है कि साहित्य एवं कला की प्रकृति मूल्य सम्पन्न नहीं होते, बल्कि वे तो भ्रम है और तुच्छ क्षतिपूरक क्रियाएँ हैं। फ्रायड के अनुसार कल्पनाप्रवण लेखक की रचना में उसी की वर्जनाएँ काम–प्रतीकों के माध्यम से स्वयं को अभिव्यक्त करती हैं। कला सृजन वास्तव में काम–प्रतीकों का पुर्नर्निमाण है। फ्रायड कला को विशुद्धतः एक शरीरिक प्रतिक्रिया मानते हैं और उसमें नैतिकता या आध्यात्मिकता की खोज को व्यर्थ समझते हैं।

फ्रायड का कहना है न केवल कविता में बल्कि मनुष्य की प्रत्येक सर्जनात्मक क्रिया में अचेतन की प्रेरणाएँ विद्यमान रहती है और कविता का उदय मानसिक व्यपार के रूप में होने के कारण उसकी स्वप्न, दिवास्वप्न एवं अन्य मानसिक व्यापारों से तुलना की जा सकती है। अतएव यदि दिवास्वप्न की प्रक्रिया को समझा जा सकता है। फ्रायड ने खेलते हुए बालक

के सदृश कवि भी कल्पना की प्रतियों का निमार्ण करता है और उसे गम्भीर भाव से ग्रहण करता है तथा अपनी मानसिक सृष्टि को तीव्र रूप से यथार्थ से पृथक् कर, उसमें अपनी बहुत–सी भवनाएँ सम्मिलित कर देता है। फ्रायड के अनुसार, कलाकार यथार्थ से पलायन के परिणामस्वरूप सृजन में आनंद लेने लगता है। यथार्थ, रचनाकर के मार्ग में बाधा उत्पन्न करता है। कल्पना का सहारा लेकर लेखक अपनी काम भावना एवं यशलिप्सा की पूर्ति करते हैं। लेखक अपनी रचना द्वारा विभिन्न स्त्रोतों के मार्ग खोलते है, जिससे हम अपनी भावनाओं को संतुष्ट कर पाते हैं।

फ्रायड कला के उदात्तीकृत रूप को सभ्यता एवं संस्कृति के मूल्यों की एक प्रगतिशील उपलब्धि मानते हैं और कला एवं स्वप्न की प्रक्रिया को समान बतलाते हैं। वस्तुतः 'अचेतन पापानुभूति, उसका प्रकाशन और समान भूमि पर आधरित उसका भाव विनियोग' फ्रायडीय साधारणीकरण की आवश्यकता पर बल देता है। इस प्रकार उसका विचार है कि एकांतिक दिवास्वप्न, कला की प्रेषणीयता में बाधक होते हैं और कलाकार को उन्हीं दिवास्वप्नों का विनियोग अपनी रचना में करना चाहिए, जो सभी व्यक्तियों में सामान्य होते हैं।

एडलर और युंग की विचारधारा

एल्फ्रेड एडलर और कार्ल युंग, फ्रायड के ही शिष्य थे; परन्तु उनकी सैद्धान्तिक स्थापनाएँ बहुत कुछ अंशों में फ्रायड से भिन्न हैं। यहाँ यह स्मरणीय है कि एडलर वैयक्तिक मनोविज्ञान के जनक के रूप में प्रसिद्ध है और उसने फ्रायड से आगे बढ़कर सामाजिक उत्थान के पक्ष पर भी विचार किया है। साथ ही दोनों की मान्यताओं में मौलिक विभिन्नता भी है। फ्रायड कामवृत्ति को ही जीवन की मूलप्रेरणा बतलाते हैं, जबकि एडलर आत्म–प्रकाशन की मूलवृत्ति को जीवनगत व्यवहारों का मूल उत्स स्वीकार करते हैं।

एडलर की दृष्टि फ्रायड से भिन्न है। एडलर साहित्य एवं कला को भावना की क्षतिपूर्ति मानते हैं। कलाकार इस माध्यम से हीनता की भावना का निराकरण करता है एवं अपने लड़खड़ाते विश्वास को स्थापित करता है।

मनोविश्लेषणवादी साहित्यशास्त्र में युंग की कलाविषयक मान्यताओं का एक विशिष्ट स्थान है क्योंकि युंग फ्रायड के सदृश न तो मानसिक चेतना को कामवृत्तियों का पुंज मानता है और न वह एडलर के समान सभी

सर्जनात्मक क्रियाओं को हीनता की क्षतिपूर्ति समझता है। वास्तव में युंग की विचारधारा अधिक स्वस्थ और आदर्शप्रवण है तथा उसका सिद्धान्त भाव प्रतिमानों पर आधारित है। उसने मनोविश्लेषण के क्षेत्र में कलात्मक रहस्यवाद का प्रवर्तन भी किया है। उसने फ्रायड की कामवृत्ति को मूल प्रेरणा के रूप में अस्वीकृत करते हुए वैयक्तिक विलक्षणताओं को व्यक्ति की सीमा से ऊपर उठाकर सामाजिक धरातल पर विवेचित किया है। युंग ने अचेतन मन की एक नवीन व्याख्या करते हुए अचेतन मन के दो स्तर– व्यक्तिगत अचेतन एवं सामूहिक अचेतन नामक दो स्तर माने हैं और अचेतन तथा चेतना को एक–दूसरे का विरोधी और पूरक बतलाया है, पर वह अचेतन मन को ही वास्तविक मानता है। युंग का विचार है कि व्यक्ति अपने शब्दातीत भावों को प्रकट करने के लिए कतिपय प्रतीकों का प्रयोग करता है। स्वप्न निरूद्देश्य न होकर, व्यक्ति की अकथ्य भावनाओं के संकेत होते हैं तथा स्वप्न प्रक्रिया का मूल उद्देश्य, अचेतन मन की सहायता से चेतन मन की गुत्थियों को सुलझाना है। इस प्रकार युंग ने मानसिक ऊर्जा को सभी विचारों की मूल प्रेरणा के रूप में प्रतिष्ठित कर, मनुष्य को कामुकता की अँधेरी गलियों से निकालकर स्वस्थ धरातल पर प्रतिष्ठित किया है और यह मानसिक ऊर्जा फ्रायड की कामवृत्ति तथा एडलर के आत्म–प्रकाशन की वृत्ति से अधिक व्यापक तत्व है।

कल्पना–प्रवण साहित्य को समझने के लिए युंग मनोविश्लेषण की आवश्यकता स्वीकार करता है और मनोविज्ञान एवं कला का पारस्परिक सम्बन्ध मानते हुए भी यह मत प्रकट करता है कि मनोविज्ञान के अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत केवल कलात्मक रूपविधान की विवेचना की जा सकती है, कला की मूल–प्रकृति का अध्ययन नहीं।

युंग के कथनानुसार, मनोविज्ञान एवं मनोविश्लेषण की विधि से कवि के वैयक्तिक सम्बन्धों में उसकी रचना के विधायक तत्वों की खोज की जा सकती है, पर उसकी कला की आलोचना नहीं की जा सकती और मनोविज्ञान का आधार लेकर कला कृति एवं कला सृजन तल्लीन लेखक का अध्ययन नहीं किया जा सकता। युंग का कहना है कि कलाकृति का अर्थ एवं विशेषता स्वयं कलाकृति में निहित होती है और उसे उसकी पूर्वावस्थाओं एवं पूर्व तत्वों में नहीं खोजा जा सकता। युंग के अनुसार कलाकार या तो

बहिर्मुखी होते हैं या अन्तर्मुखी। बहिर्मुखी कलाकार स्वयं को किसी अन्य तत्व या काव्य वस्तु के अधीन पाता है तथा अन्तर्मुखी कलाकार कुछ चेतन उद्देश्यों के अनुरूप विषयवस्तु का विवेकपूर्ण अंकन करता है।

युंग कलासृजन की प्रक्रिया का फ्रायड के सदृश, यांत्रिक या जैविक न मानकर उसको सप्राण मानता है और उसे मानवात्मा पर आधारित बतलाता है। युंग का विचार है कि स्वायत्ता ग्रंथि में इतनी शक्ति होती है कि वह कलाकार की आत्मा को अनुशासित करती है और उसे कार्य निर्देश भी देती है। युंग के अनुसार कलाकृति में प्रयुक्त बिम्बों, प्रतीकों एवं धारणाओं के विश्लेषण से हम उसका अर्थ जानने का प्रयत्न कर सकते हैं और यही मनोविश्लेषण हमारी सहायता कर सकता है। जब अचेतन की विशिष्ट भाव लहरी, चेतना के धरातल पर उपस्थित होती है; तब स्वायत्त ग्रंथि का निर्माण होता है।

मनोविश्लेषणवादी विचारकों का हिन्दी साहित्य में पर्याप्त प्रभाव एवं महत्वपूर्ण स्थान है। व्यक्ति वैचित्र्य पर यह वाद आधारित है। परन्तु मार्क्सवादी विचारकों ने मनोविश्लेषणवादी विचारकों की कटु आलोचना की है, वे साहित्य के मानवीय पक्ष के पक्षधर रहे हैं।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र की रूपरेखा, रामचन्द्र तिवारी, लोकभारती प्रकाशन।
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धांत, डॉ.गणपति चन्द्र गुप्त।
3. भारतीय और पाश्चात्य काव्य शास्त्र, मूलजी भाई।
4. पाश्चात्य साहित्य चिंतन, डॉ. निर्मला जैन।

■■

(15)

अस्तित्ववाद

डॉ. कल्पना मिश्रा

अस्तित्ववाद पर जो प्रश्न चिन्ह लगे हैं उसका एक मात्र कारण अस्तित्ववाद के सम्बन्ध में सही–सही व्याख्याओं का अभाव है। समयानुसार जीवन–दर्शनों का विकास हुआ। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण जीवन–दर्शन अस्तित्ववाद है। वास्तव में अस्तित्वाद दर्शन का विषय है। इसका क्षेत्र सहित्य अथवा कला नहीं है। अस्तित्ववादियों का मानना है कि इस संसार में मनुष्य के आने का कोई प्रयोजन नहीं है। संसार में बिना अपनी सहमति के आना पड़ता है। संसार में आने के बाद अपने को सार्थक स्वरूप प्रदान करना हमारा दायित्व है। अस्तित्ववाद एक दार्शनिक मत संबंधी वाद होते हुए भी वास्तव में समस्त परम्परागत एवं तर्कसंगत मत संबंधी वादों के विरूद्व एक विद्रोह का वाद हो गया, जिसका कारण यही है कि सभी परम्परागत दार्शनिक मतवाद विचारों और पदार्थ जगत की तो तर्क संगत व्याख्या करते हैं, किन्तु मानवीय सत्ता की सर्वथा उपेक्षा करते हैं।

अस्तित्ववाद की परम्परा

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् फ्रांसीसी विचारक ज्यापाल सार्त्र ने अस्तित्ववाद का प्रचार किया, अधिंकाश चिन्तकों एवं विद्वानों की मान्यता यही है। अस्तित्ववाद के उदय का श्रेय कुछ विद्वान डेन्मार्क के विचारक कीर्के गार्ड को प्रदान करते है, चिन्तकों का दूसरा वर्ग अस्तित्ववाद के प्रारम्भ

---

* जन्म तिथि : 05 अगस्त 1981, पति : श्री नमित मिश्रा, योग्यता : पी–एच. डी., सम्प्रति : सहायक प्राध्यापक (हिन्दी), शासकीय दू. ब. महिला महाविद्यालय रायपुर मो. : 9753554534, मेल– kalpanamishra.prof@gmail.com

को बहुत पीछे ले जाता है। अस्तित्ववाद दर्शन की परम्परा के समर्थन में यही दूसरा वर्ग, जिसके अन्तर्गत हाइडेगर, पास्काल एंव मसीही सन्त बर्नार्ड तथा आगस्टिन सम्मिलित हैं, तो आता ही है, इसका सम्बन्ध सुकरात एवं स्टाईकों जैसे आदि एवं अति प्राचीन दार्शनिकों से भी जोड़ते हैं।

वास्तव में कीर्केगार्ड को प्रचारक के साथ–साथ अस्तित्ववाद का जन्मदाता भी मानना सर्वथा उचित है। कीर्केगार्ड का समय उन्नसवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। इस प्रकार 'अस्त्विवाद दर्शन' लगभग डेढ़ सौ वर्ष पुराना है। डेनिश भाषा में लिखे हुए 'कीर्केगार्ड' के ग्रंथों का अनुवाद प्रथम विश्वयुद्ध के समय जर्मन भाषा में हुआ। जर्मनी के 'फ्रेडरिक' नीत्से, मार्टिन हेडेगर, कार्ल जात्पर्स तथा फ्रांस के गेब्रियल 'मार्शल', ज्यापाल सार्त्र, अलबर्त कामू ने इस विचारधारा के प्रचार–प्रसार में विशेष योगदान दिया।

धार्मिक आस्था की दृष्टि से अस्तित्ववादी विचारकों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है– (1) आस्तिक अस्त्विवादी – जैस्पर्स, मार्शल, सार्त्र जैसे विचारकों ने आस्तिक अस्तित्ववाद के विचार को स्वरूप एवं गति दी है। (2) नास्तिक अस्त्विवादी – फ्रेडरिक, नीत्से, मार्टिन जैसे विचारक नास्तिक अस्तित्ववादी विचारों के लिये आधार स्तम्भ रहे हैं।

अस्तित्ववाद का स्वरूप :–

ज्यापाल सार्त्र ही अस्तित्ववाद के प्रमुख लेखक, विचारक एवं प्रसारकर्ता है। 'अस्तित्ववाद' एंव 'सार्त्र' वे नाम हैं, जो एक–दूसरे से पुर्णतः जुड़े हुए हैं। अस्तित्ववाद का स्वरूप निर्धारण सार्त्र की व्याख्याओं के आधार पर ही करना उचित होगा। सार्त्र ने सन् 1951 में पेरिस में अपने एक व्याख्यान में अस्त्विवाद क्या है?, प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा था– ''अस्तित्ववादियों के दो वर्ग हैं– आस्तिक और नास्तिक। दोनों वर्गों के विद्वानों में एक समानता यह है कि वे इस प्रकार सोचते हैं कि अस्तित्व संसार से पूर्ववर्ती है।'' यदि हम चाहें तो कह सकते हैं कि अस्तित्व पहले है और उसका अनास्तिकत्व तथा हमारा प्रारम्भ बिंदु विषयीगत तत्व है। मनुष्य के मस्तिष्क में ईश्वर की अवधारणा की तुलना उत्पादक के मस्तिष्क में कागज काटने के यन्त्र से की जा सकती है। कुछ अवधि और एक अवधारणा का अनुसरण करते हुए ईश्वर उसी मानव का निर्माण करता है, जैसे कि एक शिल्पी एक परिभाषा विशेष एवं अवधि विशेष का अनुसरण करते हुए कागज काटने के यन्त्र का।

इस प्रकार व्यक्ति मानव ईश्वरीय मेधा में किसी विशेष अवधारणा की मूर्त सिद्धि है। इस सन्दर्भ में सार्त्र का कहना है कि प्रत्येक मनुष्य एक अवधारणा के रूप में मनुष्य का एक विशेष उदाहरण हुआ।

अस्तित्ववाद की आधारभूत धारणाएँ

परम्परा विचारधारा के अनुसार सृष्टि में पहले विचार का उदय हुआ। फिर विचार के अनुसार वस्तु का उदय हुआ। इस सृष्टि की उत्पत्ति हेतु विचारधारा है। इसी कारण प्लेटो आदि विचारक विचारवादी या तत्ववादी कहलाते हैं। अस्तित्ववादी विचारधारा ठीक इसके विपरीत है। तत्ववादी के निकट विचार या तत्व शाश्वत सत्य है और भौतिक जगत क्षण भंगुर है। अस्तित्ववादियों का कहना है कि वस्तु के अभाव में विचार या तत्व कैसे सम्भव हो सकता है। इनके अनुसार पहले व्यक्ति अस्तित्व में आया, बाद में उसके द्वारा विभिन्न विचारों–सिद्धान्तों आदि का निरुपण किया गया। अतएव व्यक्ति का अस्तित्व ही प्रमुख है, विचार या सिद्धांत गौण है। विचार या प्रत्यय की अपेक्षा व्यक्ति के अस्तित्व को अधिक महत्व देने के कारण ये अस्तित्ववादी कहलाते हैं। अस्तित्ववाद के सन्दर्भ में निम्नलिखित मान्यताएं दृष्टव्य हैं–

1. व्यक्ति की महत्ता– व्यक्ति प्रमुख है, समाज गौण है। इसको सार्त्र ने विषयीगत तत्व का सिद्धान्त कहा है। मनुष्य अपने आपको जो बनाता है, उसके अतिरिक्त वह कुछ नहीं है। मनुष्य मूलतः एक सम्भावना है। वह भविष्योन्मुख है, अतएव मनुष्य का भूतकाल अस्तित्ववादियों के निकट महत्वपूर्ण नहीं है।

2. क्षणवाद– मनुष्य क्षण–क्षण में जीवित रहता है। वह प्रत्येक क्षण अपने आपको पुनःसर्जित करता है और प्रत्येक क्षण को मूल्यवान बनाता है।

3. समाजिकता– मनुष्य अपूर्ण है, परन्तु समाज के लिए महत्वपूर्ण है। इस धारणा के पीछे लोक–कल्याण की अवधारणा झाँकती हुई दिखाई देती है। वह केवल अपने लिऐ नहीं जीता, समाज के लिए भी जीता है। सभी लोगों से उसके सम्बन्ध एवं व्यवहार होते हैं।

4. निरपेक्ष नास्तिकता– अस्तित्ववादी ईश्वर की सत्ता को मानव–सत्ता के प्रश्न से असम्बद्ध समझते हैं। धर्म, ईश्वर और व्यक्ति के पारस्परिक

सम्बन्धों के सन्दर्भ में ऊहापोह करने के उपरान्त सार्त्र ने अस्तित्ववादी आस्तिकता को वस्तुः निरपेक्ष अथवा आस्तिकवादी नास्तिकता कहा है। अस्तित्ववाद वास्तविकता की सुसम्बद्ध स्थिति के सारे निष्कर्ष ग्रहण करने के प्रयास के अतिरक्ति और कुछ भी नहीं है। अस्तित्ववादी ईश्वर की सत्ता को नकारने के लिए उत्सुक नहीं है। उनका कहना है कि यदि ईश्वर की सत्ता है, भी तो उससे कुछ अन्तर नहीं होता। अस्त्विवादी, ईश्वर है या नहीं, इसे स्वयं की समस्या नहीं मानते हैं। उनका मानना है कि ईश्वर के प्रति हम निरपेक्ष भाव रखते हैं।

5. स्वच्छन्दतावाद– मनुष्य अपने मूल्यों का वरण करता है और अपने आपको बनाता है। वह अपने इस वरण के लिए स्वयं उत्तरदायी है। दूसरे शब्दों में, नियती जैसी चीज कुछ नहीं है, मनुष्य स्वतन्त्र है। मनुष्य इच्छानुसार मूल्यों का वरण करने और अपने आपको बनाने में स्वतन्त्र है। साथ ही अपनी इस स्वतन्त्रता के प्रति वह अन्य मनुष्यों को सजग भी कर देता है। अतः अस्तित्ववादी दर्शन मुक्तिदायक होने के साथ–साथ भयावह भी है।

6. एकाकीपन– अस्तित्ववादी यह मानते हैं कि मनुष्य की यात्रा उसकी स्वयं की यात्रा है, जिसमें उसे अकेले ही अपना मार्ग तय करना पड़ता है। वह स्वयं ही अपना मार्ग प्रशस्त करता है।

7. दुःखवादी कर्मवाद– यथेष्ट कर्म करने की बात कर्मवाद के प्रतिपादन जैसी बात है। परन्तु अस्तित्ववादी का कर्मवाद, एकाकीपन के प्रतिपादक और लौकिक नीतिवाद का विरोधी है। वह एकाकीपन और पीड़ा को एक साथ स्वीकार करता है।

अस्तित्ववादियों का कहना है कि हमने जो चाहा, वह नहीं बन सके; तो बदले में प्रत्येक प्रकार के दुखों, यहाँ तक कि मृत्यु, को भी स्वीकार करने के लिए हम प्रस्तुत रहें। इस प्रकार अस्तित्ववादी के लिए अपने अस्तित्व का बोध और जीवन–मूल्यों का ज्ञान, दुःख या त्रास की स्थिति में ही होता है। अतः उसको इस स्थिति के स्वागतार्थ सदैव प्रस्तुत रहना चाहिए। अस्तित्व बोध का सिद्धान्त वस्तुतः दुःखवाद के सिद्धान्त पर निर्भर है। इस दर्शन के अनुसार अपना अस्तित्व, अपनी वैयक्तिक स्वतन्त्रता एवं निजी लक्ष्य का चुनाव जितना महत्वपूर्ण है; उतना ही दुःख, निराश, प्रस्तुत वेदना का भोग भी रूचिकर है। अस्तित्ववादी दुःख या पीड़ा को विवशता के रूप में नहीं,

बल्कि एक उपलब्धि के रूप में स्वीकार करते हैं।

8. समस्त आचार संहिता का विरोध– अस्तित्ववादी धार्मिक, नैतिक, चारित्रिक मूल्यों एवं नियमों के विरोधी हैं, क्योंकि ये ही वे तत्त्व हैं, जो व्यक्ति की स्वतन्त्रता अथवा स्वच्छन्दता को नियमित, नियन्त्रित अथवा बाधित करते हैं। अस्तित्ववादी का झगड़ा ईश्वर से न होकर उसके नाम पर निर्मित आस्थाओं, विश्वासों, नीति–नियमों आदि से है।

9. ज्ञान–विज्ञान का विरोध– अस्तित्ववादी के मतानुसार सारे झगड़े की जड़ विभिन्न प्रकार के सिद्धान्त, मत, वाद, नियम आदि हैं। उदाहरणार्थ, यदि हम अपने शब्द–कोष से प्रजातन्त्र, साम्यवाद, समाजवाद आदि शब्द निकाल दें, तो विश्वयुद्ध की आशंकाएँ सहज में ही समाप्त हो सकती हैं। इसी के साथ वे कहते हैं कि भाँति–भाँति के विषयों का ज्ञान होने से व्यक्ति के अस्तित्व में कोई अन्तर नहीं पड़ता है। अस्तित्ववादी यह मानते हैं कि विज्ञान द्वारा मनुष्य को विकास की ओर ले जाना ही विवादों और मतभेदों का कारण है।

10. मृत्यु का वरण– अस्तित्ववादियों की मान्यता के अनुसार, सन्त्रास में ही मनुष्य को अपने अस्तित्व का बोध होता है। भयभीत होते हुए जीवित रहने की अपेक्षा स्वतन्त्रता एवं स्वेच्छापूर्वक मृत्यु का वरण कर लेना अधिक श्रेयस्कर है। स्वयं को मृत्यु के हाथों में सौंप देना, इस उच्चतम भावों के साथ, कि मृत्यु ने हमें नहीं मारा है, हम मृत्यु से पहले ही मर गये हैं; इन भावों के द्वारा अस्तित्ववादी अपने सम्मान की रक्षा कर लेते हैं।

11. गद्यात्मकता– सार्त्र की मान्यता है कि कलाकृतियों की अभिव्यक्ति विचारों के संसार में नहीं; वस्तुओं, विषयों, बिम्बों, रंगों एवं ध्वनियों के संसार में होती है। इसी प्रकार विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम गद्य है। अस्तित्ववादी विचारक 'कवि' शब्द का प्रयोग भी परम्परागत रूप में नहीं करते। गद्य ही एक ऐसी विधा है, जो अस्तित्ववादी के अंश– व्यक्तिनिष्ठा की अभिव्यक्ति में समर्थ होती है।

हिन्दी कविता और अस्तित्ववाद

अस्तित्ववादी का प्रभाव हिन्दी कविता पर भी पड़ा है। यह प्रभाव अंग्रेजी कविता के माध्यम से हिन्दी में आया है, जिसे अंग्रेजी की नकल भी कहा जा सकता है। अंग्रेजी के अस्तित्ववादी प्रभाव से लिखी गई हिन्दी

कविता को 'प्रयोगवादी कविता' कहा जाता है। हिन्दी कविता में अस्तित्ववादी प्रकृति सन् 1942 से लेकर 1960 तक चलती है, जिसने बाद में 'प्रयोगवाद' के स्थान पर 'नई कविता' का नाम धारण कर लिया था। अस्तित्ववादी की प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं– 1. नवीन छन्द योजना, 2. पीड़ा की स्वीकृति, 3. निराशवादी प्रवृत्ति, 4. अनास्था, 5. उन्मुक्त भोग, 6. अहं का विस्फोट, 7. अस्तित्व बोध, 8. नवीन उपमान, 9. मृत्यु का वरण।

बौद्धिक सघनता के कारण अस्तित्ववाद से प्रभावित हिन्दी कविता सर्वथा गद्यात्मक हो गई है एवं सार्त्र की इस उक्ति का प्रमाण प्रतीत होती है कि अस्तित्व बोध की अभिव्यक्ति गद्य के द्वारा ही सम्भव है।

उपसंहार

चयन की स्वतन्त्रता ही अस्तित्ववाद का साध्य है। इसके लिए अस्तित्ववादी दुःख और मृत्यु का भी वरण करने को प्रस्तुत रहते हैं। ईश्वर के अस्तित्व अथवा अनास्तित्व से इन्हें कोई अन्तर नहीं पड़ता। अस्तित्ववाद वास्तव में व्यक्तित्ववाद का ही जीवन दर्शन है, जो अहंवाद एवं उच्छृंखलता की वैसाखियों पर खड़ा होकर चला है। इसकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ व्यक्तिवाद, आत्मरति, कामुकता, परम्परा का विरोध, निराशा आदि हैं। साहित्य के क्षेत्र में अस्तित्ववाद की अभिव्यक्ति के लिए सबसे उपयुक्त माध्यम उपन्यास को माना गया है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र की रूपरेखा, रामचन्द्र तिवारी, लोकभारती प्रकाशन।
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धांत, डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त।
3. भारतीय और पाश्चात्य काव्य शास्त्र, मूलजी भाई।
4. पाश्चात्य साहित्य चिंतन, डॉ. निर्मला जैन।

■■